चन्दामामा
जुलाई १९८७
2.50

चॉको-क्रीम मेरा नाम!
Ravalgaon Double Trouble
"उधर भालू, इधर शेर टॉफियां खाने में मत कर देर!!"
Ravalgaon Double Trouble
कॉफी-क्रीम मेरा नाम!
Ravalgaon
Double Trouble
Toffees
डबल मुसीबत में डबल मज़ा!!

डायमंड कामिक्स में

कार्टूनिस्ट 'प्राण' का

पिंकी और हातिमताई

चुलबुली पिंकी की नटखट शरारतें

हर पृष्ठ पर हंसा हंसा कर लोटपोट कर देने वाले कारनामें

अन्य नये डायमण्ड कॉमिक्स

मूल्य प्रत्येक 5/-

अंकुर बाल बुक क्लब

डायमंड कॉमिक्स की बच्चों के लिये नई निराली अनुपम योजना अंकुर बाल बुक क्लब के सदस्य बनिये और हर माह घर बैठे डायमंड कॉमिक्स डाकव्यय की फ्री सुविधा के साथ प्राप्त करें।

सदस्य बनने के लिए आपको क्या करना होगा :–

1. संलग्न कूपन पर अपना नाम व पता भर कर भेज दें। नाम व पता साफ-साफ लिखें ताकि पढ़ने में आसानी हो।
2. सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनी आर्डर या डाक टिकट द्वारा कूपन के साथ भेजें। सदस्यता शुल्क प्राप्त होने पर ही सदस्य बनाया जायेगा।
3. हर माह पांच पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर 2/- की विशेष छूट व डाक व्यय फ्री की सुविधा दी जायेगी।
4. आपको हर माह Choice कार्ड भेजा जायेगा यदि आपको निर्धारित पुस्तकें पसन्द हैं तो वह कार्ड भरकर हमें न भेजें।
5. इसी योजना के अन्तर्गत हर माह की 20 तारीख को आपको वी.पी. भेजी जायेगी।

---------- सदस्यता कूपन ----------

मुझे अंकुर बाल क्लब का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनी आर्डर/डाक टिकट से साथ भेजा जा रहा है। (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ....

पिता का नाम ....

पता ....

डाकखाना ....

जिला ....

डायमंड कॉमिक्स पेश करते हैं—नई—

कॉमिक्स डाइजेस्ट

रामायण

मूल्य प्रत्येक 12/-

डायमंड कामिक्स प्रा.लि. 2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
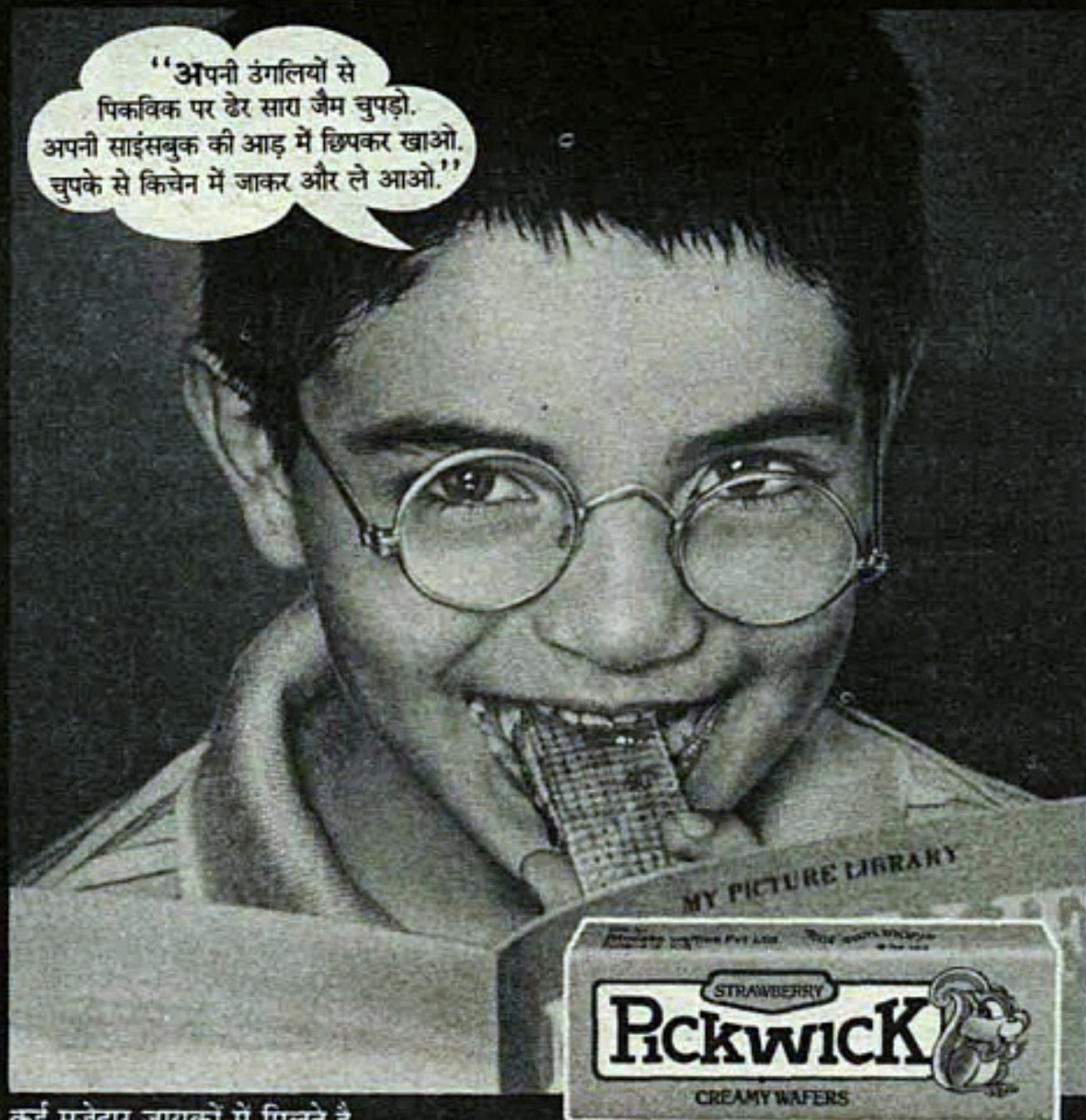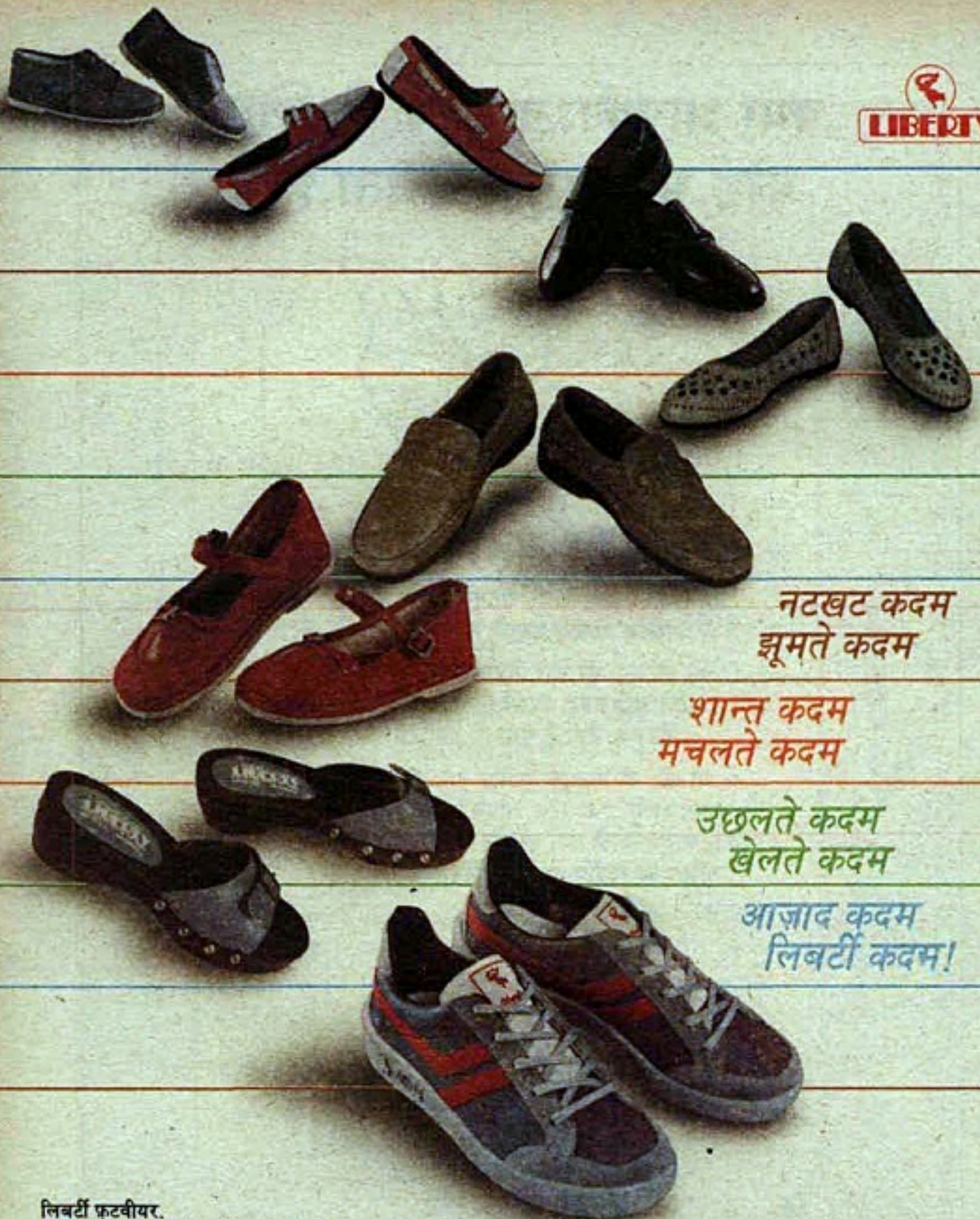
LIBERTY
नटखट कदम
झूमते कदम
शान्त कदम
मचलते कदम
उछलते कदम
खेलते कदम
आज़ाद कदम
लिबर्टी कदम!
लिबर्टी फ़ुटवीयर.
स्कूल तथा खेलकूद में नन्हें कदमों की मौज-
मस्ती के लिये मनभावन रंगों और डिज़ाइनों
की सुन्दर श्रृंखला.
साथ ही 100% इम्पोर्टेड P.U. से बना हल्का-
फुल्का और रगड़ से बेअसर सोल जो शरीर के
बोझ को एड़ी तथा पंजे तक सीमित न रख
LIBERTY
हमेशा एक कदम आगे!
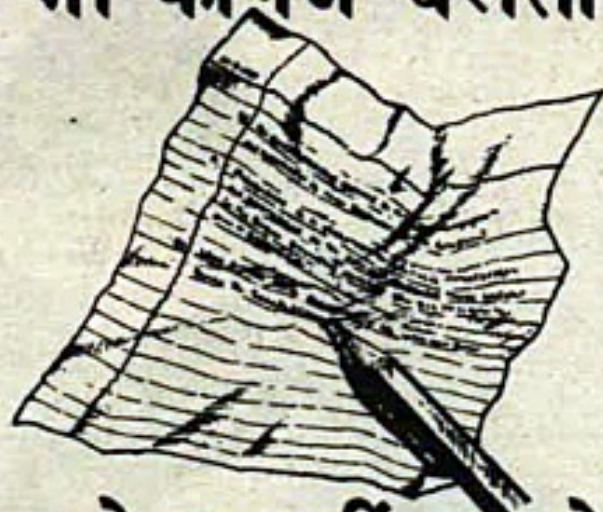
चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

इस अंक की 'स्मृति-चिह्न' कहानी इस बात का उदाहरण है कि सच्ची सहायता क्या है। विपदा में फँसे हुए लोगों की सहायता करने की प्रवृत्ति अनेक लोगों में होती है। किन्तु कुछ विरले ही ऐसे हैं जो अपनी सहायता से किसी व्यक्ति को उसके कष्टों से पूर्ण रूप से मुक्त कर सकते हैं। 'स्मृति-चिह्न' में केशव चक्रवर्ती एक ऐसे ही चरित्र हैं।

अमर वाणी

गुणेषु क्रियतां यत्नः, किमाटोपैः प्रयोजनम्।
विक्रीयंते न घंटाभिर्गावः, क्षीरविवर्जिताः ।।

[प्रयत्न करके उत्तम गुणों का विकास कर लेना चाहिए। केवल बाह्याडम्बर से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जिनके थनों में दूध नहीं रहा, ऐसी गायों को उनके गले में बंधी घंटियों के कारण कोई नहीं ख़रीदता।]
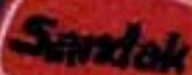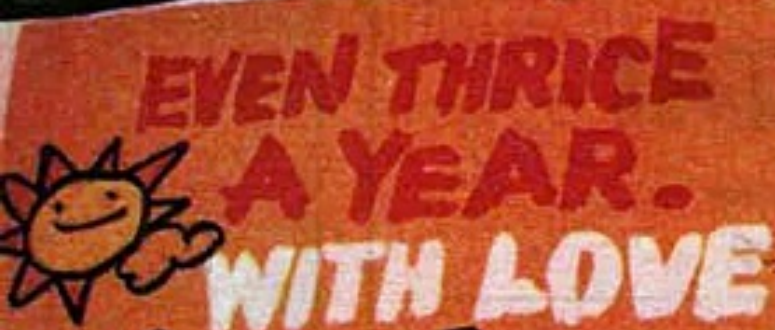
वर्ष : ३९ जुलाई १९८७ अंक : ११
एक प्रति : २-५० :: वार्षिक चन्दा : ३०-००

Sandak

EVEN THRICE A YEAR. WITH LOVE
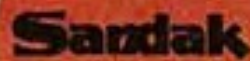
WE WANT SANDAK

SANDAK everytime

Mothers love Sandak,
because Sandak is made
from pure Chemilon*. Safe, affordable
versatile, durable Chemilon.
And because children
love Sandak, too!

For all times

* Registered Trademark

'चन्दामामा' के संवाद

सर्वोच्च शिखर ?

यह सर्व विदित है कि हिमालय का एवरेस्ट शिखर विश्व में सबसे ऊँचा है। पर इसी बीच अमरीका के अन्तरिक्ष यान ने ऐसा संकेत दिया है कि हिमालय का 'के-2' नाम दिया गया शिखर एवरेस्ट से भी थोड़ा ऊँचा है। पर इस बात को अभी प्रमाणित नहीं किया जा सका है।

पुराणों की द्वारका

पुराणों में यह वर्णन मिलता है कि पश्चिमी समुद्र तट पर श्रीकृष्ण ने द्वारका नगर का निर्माण करवाया था, पर वह बाद में समुद्र में डूब गया। कच्छ खाड़ी एवं अरब सागर के तट पर जो खोज हुई है, उससे यह विदित होता है कि लगभग साढ़े तीन हज़ार वर्ष पूर्व उस प्रदेश में सचमुच ही किसी नगर का अस्तित्व था। इस बात को लेकर व्यापक रूप में अन्वेषण-कार्य चल रहा है।

पालतू चिम्पांजी

जयपुर के निवासी प्रताप ने राधा नामक पाँच महीने की चिम्पांजी को लेकर उसका पालन-पोषण इस ढंग से किया कि वह मानवों जैसा व्यवहार करना सीख सके। प्रताप ने इस दिशा में पूरी सावधानी बरती। आज चिम्पांजी राधा मानवों की भाँति पोशाक स्वयं पहन और निकाल लेती है और प्याले से चाय भी मानवों की तरह ही पीती है।

राक्षस छिपकली

तिरुपति से ४५ कि॰ मी॰ पश्चिम में स्थित तलकोना के वन में १८ फुट लम्बी एक विशाल छिपकली दिखाई दी है। वेंकटेश्वर विश्व विद्यालय जंतु शास्त्र विभागवालों ने कुछ लोगों को उसका फोटो लेने के लिए भेज दिया है। हमारे देश में तीस वर्ष पहले भी एक ऐसी राक्षस छिपकली दिखाई दी थी।

शल

सुशोभना एवं परीक्षित का पुत्र शल अहंकारी था। एक दिन वह शिकार खेलने के लिए गया। वन में शल एक हिरन को पकड़ने के लिए उसका पीछा करने लगा। बड़ी दूर तक पीछा करने के बाद भी वह हिरन को नहीं पकड़ पाया। उसके रथ में जुते घोड़े थक गये। किन्तु शल हिरन को पकड़े बिना लौटना नहीं चाहता था। उसने चारों ओर दृष्टि डाली तो कुछ दूर पर उसे किसी मुनि का आश्रम दिखाई दिया। उस आश्रम के पास दो घोड़े भी बंधे हुए थे। वह आश्रम वासुदेव नाम के एक मुनि का था।

शल ने आश्रम में जाकर भक्ति पूर्वक वासुदेव को प्रणाम किया। इसके बाद शिकार में हिरन को पकड़ पाने की अपनी असफलता को बताकर प्रार्थना की, "मुनिवर, मुझे आप अपने ये दोनों घोड़े दे दीजिए!"

"ठीक है, शल! तुम ये दोनों घोड़े ले जा सकते हो, किन्तु जैसे ही तुम्हारा आखेट-कार्य पूरा हो, ये घोड़े मुझे लौटा देना!" मुनि ने कहा।

"अवश्य, मुनिवर! मैं घोड़े लौटाने के बाद ही राजधानी लौटूँगा।" यह कहकर शल ने घोड़ों को पकड़कर रथ में जोत लिया। इसके बाद वह पुनः हिरन का पीछा करने लगा। उसने उस हिरन के अलावा और भी मृगों का शिकार किया और राजधानी की ओर अपना रथ बढ़ाया।

मुनि वासुदेव के शिष्यों ने उसका पीछा करते हुए कहा, "महाराज, आपने शिकार समाप्त होने पर घोड़ों को गुरुदेव को लौटाने का वचन दिया था। अब आप घोड़े लेकर कहाँ जा रहे हैं?"

"इन सुन्दर बलशाली घोड़ों को मैं वापस न दूँगा। जप-तप में लगे रहनेवाले तुम्हारे गुरुदेव को इन घोड़ों की क्या आवश्यकता है? तुम लोग अपने गुरु से कह दो कि वे चाहें तो राजधानी में आकर इन घोड़ों के बदले दो गायें ले जायें।" यह कहकर शल ने अत्यन्त दर्प के साथ घोड़ों को हाँक दिया।

दूसरे ही क्षण वे दोनों घोड़े दो राक्षसों के रूप में परिवर्तित होगये। उन्होंने कृतघ्न शल के रथ को उलट दिया और वचन से मुकरनेवाले इस राजवंशी शल का संहार करके वासुदेव मुनि के आश्रम को लौट गये।

धरमपुर में करमचन्द नाम का एक महाजन रहता था। वह चक्रवृद्धि ब्याज के नाम पर गरीबों को बुरी तरह लूटा करता था। रंगनाथ करमचन्द का इकलौता बेटा था। उसने थोड़े ही समय में अपने पिता के मार्गदर्शन में महाजनी की सारी खूबियाँ सीख ली थीं और अब वह उन हथकंडों का प्रयोग कर जनता को सताता था।

अचानक करमचन्द को लकवा मार गया। वैद्य-हक़ीमों से इलाज कराने की उसकी इच्छा नहीं थी। वह अपने ऊपर किसी प्रकार का व्यय करना बेकार समझता था।

पर रंगनाथ अपने पिता को दिल से चाहता था। उसने कुशल वैद्यों से अपने पिता का इलाज करवाया, पर कोई फायदा न हुआ।

उन्हीं दिनों धरमपुर में दयानिधि नाम के एक फ़क़ीर का आगमन हुआ। सर्वत्र यह चर्चा फैल गयी कि यह फ़क़ीर अत्यन्त ज्ञानी और ऋद्धि-सिद्धियों का स्वामी है। सारा धरमपुर उस फ़क़ीर के दर्शनों को उमड़ पड़ा।

रंगनाथ ने भी दयानिधि स्वामी के दर्शन किये और अपने पिता का हाल सुनाया तथा प्रार्थना की, "स्वामी जी, मेरे पिताजी स्वस्थ होसकें, इसका कोई उपाय बताइये !"

दयानिधि ने कुछ क्षणों के लिए आँखें बन्द कीं, फिर खोलकर कहा, "तुम्हारे पिता ने महाजनी के धंधे में कई लोगों का सर्वनाश किया है। उसने जितना धन कमाया है, उससे कहीं अधिक पाप कमाया है। यदि वह काशी के विश्वनाथ का दर्शन करके गंगाजल का सेवन करे तो उसकी व्याधि निर्मूल हो जायेगी।"

रंगनाथ ने दीनता दिखाते हुए निवेदन किया, "स्वामी जी, मेरे पिताजी चलने-फिरने की स्थिति में नहीं हैं। ऐसी हालत में उनके लिए इतनी दूर की यात्रा करना संभव नहीं होगा।"

करुणा दीक्षित

रंगनाथ यात्रा पर निकल गया ।

रंगनाथ ने काशी पहुँचकर विश्वनाथ के दर्शन किये और गंगा में स्नान करके तांबे के एक बर्तन में गंगाजल भरकर वापसी यात्रा पर निकल पड़ा।

रंगनाथ को यात्रा के बीच एक जंगल से होकर गुज़रना पड़ा। अभी वह आगे बढ़ ही रहा था कि पिपीलिका नाम का एक पिशाच उसके सामने प्रत्यक्ष होगया । पिशाच को देखकर रंगनाथ सिर से पैर तक काँप उठा ।

तब पिपीलिका ने उसे समझाते हुए कहा, "डरो मत ! मैं हित करनेवाला पिशाच हूँ, हानि पहुँचानेवाला नहीं । क्या तुम मुझसे कोई मदद चाहते हो ?"

रंगनाथ संभलकर बोला, "तुम मेरी कोई मदद क्या करोगे ? मैं काशी में विश्वनाथ भगवान के दर्शन करके लौट रहा हूँ। मेरे हाथ में पवित्र गंगाजल है। इससे मेरे पिताजी का लकवा दूर हो जायेगा ।"

पिपीलिका पिशाच ने रंगनाथ को प्रणाम करके कहा, "आप तो मानव श्रेष्ठ हैं। कृपया इस गंगाजल में से थोड़ा मुझे भी दें, वह मुझे भी अवश्य इस पिशाच-दशा से मुक्त कर देगा ।"

"इस गंगाजल को लाने के लिए मैंने बड़ा श्रम किया है, बहुत व्यय भी किया है। यह जल तुम जैसे पिशांचों को देने के लिए नहीं है। मेरे रास्ते से हट जाओ !" यह कहकर रंगनाथ आगे बढ़ा ।

पिपीलिका पिशाच उसके पीछे चलते हुए

"तब तुम अपने पिता के लिए यह कार्य करो ! काशी जाकर विश्वनाथ की पूजा करो और गंगाजल लाकर अपने पिता को उसका सेवन कराओ । अवश्य ही तुम्हारे पिता को लाभ होगा।" दयानिधि ने समझाकर कहा ।

रंगनाथ ने काशी की यात्रा की तैयारी आरंभ कर दी । उसे यात्रा का प्रबन्ध करते देख करमचन्द बोला, "बेटा, मैं बीमारी के कारण पलंग पर पड़ा हुआ हूँ। इधर तुम काशी जाने का निश्चय कर बैठे हो। हमारा महाजनी का धंधा ठप्प हो जायेगा ।"

"पिताजी, आपको इस हालत में देखना मेरी सहनशक्ति से बाहर है। मैं काशी जाकर जल्दी से जल्दी लौट आऊँगा ।" इस प्रकार समझाकर

बोला, "गंगा नदी में स्नान करके आप इस पवित्र जल को लाये हैं। आप सचमुच ही बड़े पुण्यात्मा हैं। आपकी चरण-रज से भी मैं अपने पापों से मुक्त हो सकता हूँ।" यह कहकर पिशाच ने वह मिट्टी अपने हाथ में ली, जिस पर रंगनाथ के चरण पड़े थे और उसे आँखों से लगाकर भक्तिपूर्वक अपने सिर पर छिड़क लिया।

इसके दूसरे ही क्षण में पिपीलिका पिशाच का रूपान्तर होगया। वह सफ़ेद वस्त्र धारण किये एक नारी के रूप में प्रकट हुआ और रंगनाथ के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर अदृश्य होगया।

इस घटना पर चकित हो रंगनाथ कुछ दूर और आगे बढ़ा। तभी उसके सामने एक सुदृढ़ शरीर वाला व्यक्ति आया। वह पहियेदार एक गाड़ी चला रहा था। उसमें एक बालक था।

उसने रंगनाथ को प्रणाम कर पूछा, "महाशय, क्या मैं आपकी कोई मदद कर सकता हूँ ?"

"मेरी मदद ? तुम कौन हो ? क्या नाम है तुम्हारा ?" रंगनाथ ने पूछा।

"महाशय, मेरा नाम रुधिरोष्ण है। किसी ज़माने में मैं एक कुख्यात डाकू था। मैंने जो पाप किये, उनके फलस्वरूप मेरा पुत्र कोढ़ का शिकार होगया। मैंने लूटपाट छोड़ दी है और अब मैं आप जैसे लोगों की मदद करके अपने पाप-फल को कम करने की कोशिश कर रहा हूँ।" रुधिरोष्ण ने कहा।

"तुम्हारी मदद की मुझे ज़रूरत नहीं है। मुझे अपने रास्ते पर जाने दो ! वैसे भी मैं जल्दी में हूँ।" रंगनाथ ने कहा।

रुधिरोष्ण ने रंगनाथ के हाथ के तांबे के पात्र को बड़ी जिज्ञासा से देखा, फिर पूछा, "इस पात्र में क्या है ? बड़ी सावधानी से पकड़े हुए हो।"

"इसमें पवित्र गंगाजल है। इसका सेवन कराकर मुझे अपने पिता की लकवे की बीमारी को दूर करना है।" रंगनाथ ने उत्तर दिया।

"महाशय, इसमें से थोड़ा-सा जल मेरे पुत्र के लिए दे दो ! मुझे पूरा विश्वास है, उसकी व्याधि दूर हो जायेगी।" रुधिरोष्ण ने आग्रह करते हुए कहा।

रंगनाथ ने क्रुद्ध होकर कहा, "मैं अनेक कष्ट सहन करके यह गंगाजल लाया हूँ। यह पवित्र जल तुम जैसे डाकुओं को दान करने के लिए

नहीं है।" यह कहकर वह तेज़ी से आगे बढ़ा।

उस समय रंगनाथ के तांबे के पात्र से गंगाजल की कुछ बूँदें छलक कर नीचे गिर पड़ीं। यह देखकर रुधिरोष्ण बोला, "इस पवित्र जल की एक बूंद का स्पर्श भी मिल जाये तो मेरे पुत्र की व्याधि दूर हो सकती है।" यह कहकर उसने उस स्थान की मिट्टी को उठा लिया, जहाँ पानी की बूँदें गिरी थीं और उसे अपने पुत्र के शरीर पर मल दिया।

दूसरे ही क्षण डाकू के बेटे का शरीर सुनहरी कांति से दमक उठा।

रुधिरोष्ण ने रंगनाथ को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके कहा, "महाशय, मैं आपका उपकार कभी नहीं भूल सकता।"

रंगनाथ ने घर लौटकर पिता को यात्रा का सारा वृत्तान्त सुनाया, फिर कहा, "पिताजी, गंगा नदी में स्नान करने से मुझे अपार पुण्य प्राप्त हुआ है। इसीलिए मेरी चरणधूलि के स्पर्श से पिशाच को मुक्ति मिल गयी और गंगाजल की मिट्टी से डाकू के पुत्र की कोढ़ की बीमारी दूर होगयी। इस समय मैं स्वयं अपने हाथों से आपको गंगाजल पिलाने जा रहा हूँ। पिताजी, आपकी बीमारी अवश्य दूर हो जायेगी।" यह कहकर रंगनाथ ने तांबे के लोटे का थोड़ा-सा जल अपने पिता को पिलाया।

गंगाजल पीने के बाद करमचन्द के हाथ-पैर तो क्या ठीक होते और उलटे बोलती भी बन्द होगयी। देर तक सोचने के बाद भी रंगनाथ की समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ?

इसके एक सप्ताह बाद स्वामी दयानिधि का पुनः धरमपुर में आगमन हुआ। वह अपनी दक्षिण की यात्रा समाप्त करके लौटा था।

रंगनाथ ने दयानिधि के दर्शन किये और काशी से वापसी की यात्रा में हुए अपने अनुभवों को दयानिधि को सुनाकर पूछा, "स्वामीजी, उस पवित्र गंगाजल का सेवन करने से मेरे पिताजी की व्याधि तो क्या दूर होती, उलटे उनकी वाणी भी मूक होगयी है। मैं समझ नहीं पा रहा कि ऐसा क्यों हुआ?"

दयनिधि ने गंभीर होकर उत्तर दिया, "पिपीलिका पिशाच और डाकू रुधिरोष्ण ने अपने किये हुए पापों को पहचाना और उनके लिए

पश्चाताप किया । इतना ही नहीं, दूसरों का हित-चिन्तन भी करने लगे । पर तुमने केवल अपने पिता का ही हित ध्यान में रखा और इसी स्वार्थ-भावना के कारण रास्ते में मिले उन दुखी जनों के खुशामद करने पर भी उन्हें थोड़ा-सा जल नहीं दिया । तुम्हारे पिता ने महाजनी के व्यापार में अनेक परिवारों को भिखारी बना दिया । लकवा मार जाने पर भी अपने पापों का प्रायश्चित नहीं किया । इसीलिए गंगाजल भी उसे स्वस्थ नहीं बना सका ।''

''स्वामीजी, महाजनी का धंधा हमारा पेशा है। उस व्यापार में जो स्वाभाविक है, वही मेरे पिताजी ने किया है । मेरे पिताजी को आप पापी कैसे कह सकते हैं ?'' रंगनाथ ने साधु से पूछा ।

यह प्रश्न सुनकर दयानिधि मुस्कराकर बोला, "हर पेशे में न्याय और अन्याय दोनों होते हैं । तुम लोगों ने न्यायपूर्वक ब्याज न लेकर अन्यायपूर्वक कई गुना अधिक ब्याज लिया है और लोगों की मजबूरी का फ़ायदा उठाकर उन्हें कंगाल बनाया है ।''

रंगनाथ को बात समझ में आगयी । उसने दयानिधि को साष्टांग प्रणाम किया और कहा, ''स्वामी जी, आपने मुझे ज्ञान की शिक्षा दी है ।'' यह कहकर वह घर गया और तांबे का गंगाजल गाँव भर के रोगियों में बाँट दिया । महाजनी में अन्यायपूर्वक जो धन कमाया था, उसे ग़रीबों में दान कर दिया और कम ब्याज लेते हुए महाजनी का व्यापार नये सिरे से आरंभ किया ।

दयानिधि के द्वारा दिये गये ज्ञान को करमचन्द ने अपने पुत्र के मुँह से सुना और समझा । इसके बाद करमचन्द ने न केवल पश्चाताप किया, बल्कि रंगनाथ के द्वारा व्यापार में किये गये सारे परिवर्तनों की सराहना भी की । इसके कुछ दिन बाद ही उसकी व्याधि दूर होगयी और जुबान भी ठीक होगयी ।

पिता और पुत्र ने यह बात समझ ली कि मानवता और उत्तम व्यवहार गंगाजल से भी अधिक पवित्र और महत्वपूर्ण है । वे दोनों ही अब सदाचरण करते हुए रहने लगे और धरमपुर में अपने धार्मिक कार्यों के लिए यशस्वी बने ।

शर्त

रत्नपुर के राजा अशोकगुप्त के दरबार में अनेक विद्वान सभासद थे। उनमें चिदानन्द नाम का एक विदूषक भी था। वह अपनी सरस हास्योक्तियों द्वारा न केवल राजा का मनोरंजन करता था, बल्कि अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर उसकी सलाह भी बड़े काम की होती थी। अपनी स्वामी भक्ति, दक्षता, हास्यप्रियता और स्नेहपूर्णता के कारण वह राजा के अन्तरंग व्यक्तियों में एक बन गया था।

चिदानन्द का साला मोहनसिंह राजधानी से दूर एक गाँव कीरतपुर में रहा करता था। उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह अपने बहनोई के प्रभाव से राजदरबार में एक पद प्राप्त कर सके। वह रत्नपुर अपने बहन-बहनोई के घर पहुँचा और उसने चिदानन्द के सामने अपने मन की अभिलाषा प्रकट की। चिदानन्द ने अपने साले की बात सुनी, पर उसे मोहनसिंह की बुद्धिमत्ता एवं व्यवहार-कुशलता पर बिलकुल भरोसा नहीं था।

उसने अपने साले को समझाकर कहा, "सुनो, मोहन! मेरे कहने मात्र से राजा तुम्हें कभी नौकरी नहीं देंगे। राज दरबार में केवल उन्हीं लोगों को नौकरी मिलती है, जिनमें सामर्थ्य, समय का ज्ञान, बुद्धिमत्ता एवं कुशलता हो।"

"जीजाजी, आप जिन सामर्थ्य आदि गुणों की बात कर रहे हैं, वह मैं राजा अशोक गुप्त के सामने स्वयं प्रमाणित करूँगा। मुझे तो आप एक बार राजा से मिलवा दें, बस!" मोहनसिंह ने अनुनय की।

"तुम्हें महाराज से मिलाना कोई बड़ी बात नहीं है। पर मेरे मन में इस बात का भरोसा नहीं है कि तुम्हारी बुद्धिमत्ता राजा के सामने काम आयेगी।" चिदानन्द ने उत्तर दिया।

बहनोई के इन शब्दों से मोहनसिंह के आत्माभिमान को धक्का लगा। वह कुछ रुष्ट

गोपाल राय

होकर बोला, "जीजाजी, तब हम कोई शर्त बद लेते हैं।" यह कहकर उसने एक विचित्र-सी शर्त अपने बहनोई चिदानन्द के सामने रखी।

शर्त सुनकर चिदानन्द को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने ऐसी अजीब शर्त इससे पहले नहीं सुनी थी। मोहनसिंह का कहना था कि इस शर्त को राजा के सामने ही क्रियान्वित किया जायेगा। वह समझ न पाया कि मोहनसिंह को क्या जवाब दिया जाये। उसने मौन रहकर अपना सिर हिला दिया।

दूसरे दिन चिदानन्द मोहनसिंह को राजदरबार में ले गया। उस समय राजा अशोक गुप्त अपने सेवक के हाथ से दूध का पात्र ग्रहण कर रहे थे। चिदानन्द ने राजा को प्रणाम किया। इसके बाद अपने साले मोहनसिंह का परिचय दिया।

मोहनसिंह ने राजा को प्रणाम करके पूछा, "महाराज ! क्या आप दुग्धपान मुँह से ही करते हैं ?"

राजा को इस प्रश्न पर आश्चर्य हुआ, साथ ही क्रोध भी आया। उन्होंने गुस्से में आकर पूछा, "क्या दुग्धपान मुँह से नहीं, नाक से किया जाता है ?"

"क्षमा कीजिए, महाराज ! यदि आप कोई शर्त लगायें तो मैं यह दूध नाक से पीकर दिखा सकता हूँ।" मोहनसिंह ने कहा।

राजा को यह बात विचित्र-सी लगी। उन्होंने मुस्कराकर पूछा, "अच्छी बात है। बताओ, शर्त में कौन-सी चीज़ दाँव पर लगायी जाये ?"

मोहनसिंह ने विनयपूर्वक कहा, "महाराज, मैं बेरोजगार हूँ। मेरे पास चांदी का केवल एक रुपया है। मैं इसे दाँव पर लगाता हूँ।"

राजा ने मोहनसिंह की बात मानली और अपने हाथ का दूध का पात्र उसके हाथ में दे दिया ।

मोहनसिंह ने सारा दूध गटागट मुँह से पी लिया और कहा, 'महाराज ! मैं हार गया हूँ ।'' यह कहकर उसने चांदी का रुपया राजा के सामने रख दिया ।

यह देख राजा अशोकगुप्त ज़ोर से हँस पड़े । चिदानन्द विदूषक ने मोहनसिंह के कंधे पर थपकी देकर कहा, ''वाह, मोहनसिंह, सचमुच ही तुम बहुत बुद्धिमान हो ।''

राजा अशोकगुप्त ने चकित होकर चिदानन्द की ओर देखा । चिदानन्द ने विनम्र होकर राजा से कहा, ''महाराज ! आप क्षमा करने का आश्वासन दें तो मैं आपके सामने एक छोटा-सा निवेदन करना चाहूँगा ।''

''बताओ, क्या बात है ?'' राजा ने विस्मित होकर पूछा ।

चिदानन्द ने अपने साले मोहनसिंह का राजधानी में आने का प्रयोजन बताया, तब निवेदन किया, ''महाराज, मैंने मोहन से कह दिया था कि राज दरबार में नौकरी प्राप्त करने के लिए अन्य किसी की सिफ़ारिश काम न देगी । अपनी बुद्धिमत्ता, समय का आशु ज्ञान और कुशलता होनी चाहिए । मेरी बात सुनकर इसने मेरे साथ एक़ विचित्र शर्त लगायी । वह यह थी कि जब हम राजा के दर्शन करने जायेंगे, उस समय यदि वे दूध, रस अथवा पानी जैसी कोई चीज़ पीने जा रहे होंगे तो मोहनसिंह उस पेय को चांदी के एक़ रुपये के बदले पीकर दिखायेगा । शर्त में यह भी शामिल था कि महाराज स्वयं अपने हाथ से उस पेय को मोहनसिंह को देंगे, तभी वह शर्त पूरी हुई मानी जायेगी । महाराज ! मेरा साला यह शर्त जीत गया है ।''

राजा ने मुस्कराकर कहा, ''क्यों नहीं ?'' फिर बोले, ''तुम्हारे साले ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मनुष्य अपनी बुद्धिमता से कोई भी कार्य सिद्ध कर सकता है ।'' यह कहकर राजा ने मोहनसिंह को उसी समय दरबार में नौकरी दे दी ।
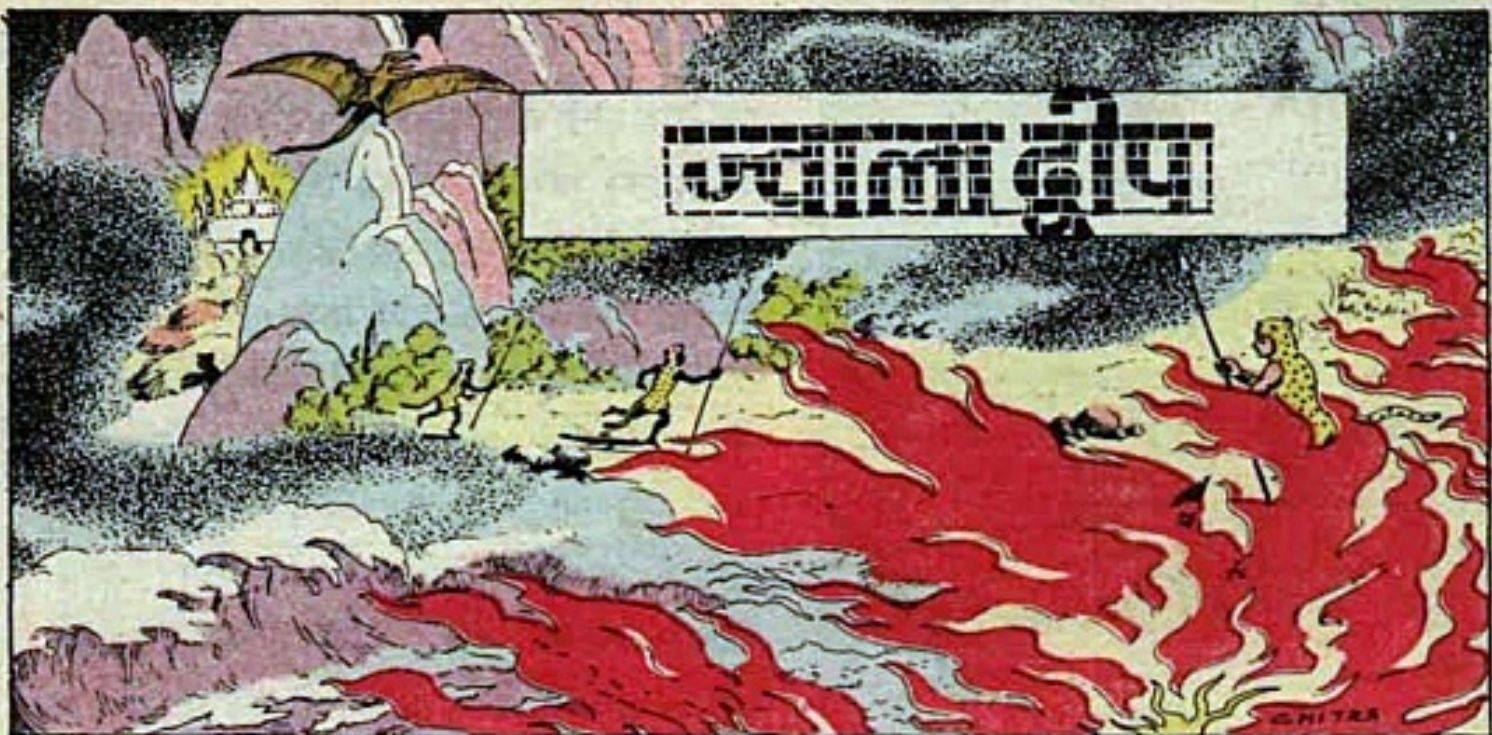
[१४]

[चित्रसेन ने अपने वचन के अनुसार उग्राक्ष को अपनी प्रथम संतान राजकुमार अमितसेन को नहीं सौंपा, बल्कि दो बार उसे कपटपूर्वक रसोइये और गड़रिये के बेटों को राजकुमार कह कर दिया गया। उग्राक्ष ने कुछ ही देर में इस छल को समझ लिया। अन्त में विवश होकर चित्रसेन ने अपने पुत्र को उग्राक्ष के हाथ सौंप दिया। उग्राक्ष ने उस बालक का नया नामकरण उग्रदत्त किया और वह अपने दुर्ग में अन्य दो बालकों के साथ उसका पालन-पोषण करने लगा। आगे पढ़िये ...]

चित्रसेन का पुत्र राजकुमार अमितसेन प्रथम संतान होने के कारण और भी अधिक प्रिय था। पाँच वर्ष की आयु तक वह राजमहल में सुखपूर्वक पलता रहा। चित्रसेन ने अपने पराक्रम से न केवल नया राज्य अर्जित किया था, बल्कि उसका विस्तार भी किया था। प्रजा उसे चाहती थी और वह स्वयं भी प्रजा की मान-मर्यादा का ध्यान रखता था। यह प्रजा की मर्यादा ही थी कि उसने अपना वचन-भंग न कर अपनी पहली प्यारी संतान राजकुमार अमितसेन को उग्राक्ष को सौंप दिया था। पाँच वर्ष पल भर में गुज़र गये और अमितसेन उग्राक्ष का होगया। उग्राक्ष को दिये जाने के बाद वह उसके दुर्ग में उग्रदत्त नाम से पलने लगा। उग्राक्ष ने उसके लाड़-प्यार में कोई कमी नहीं होने दी। उसके साथ खेलने के लिए गाँव से दो बालकों को चुराकर लाया गया। उग्राक्ष ने उन बालकों को रुद्र और अरुद्र नाम दिया। ये तीनों बालक अन्य राक्षस बालकों के
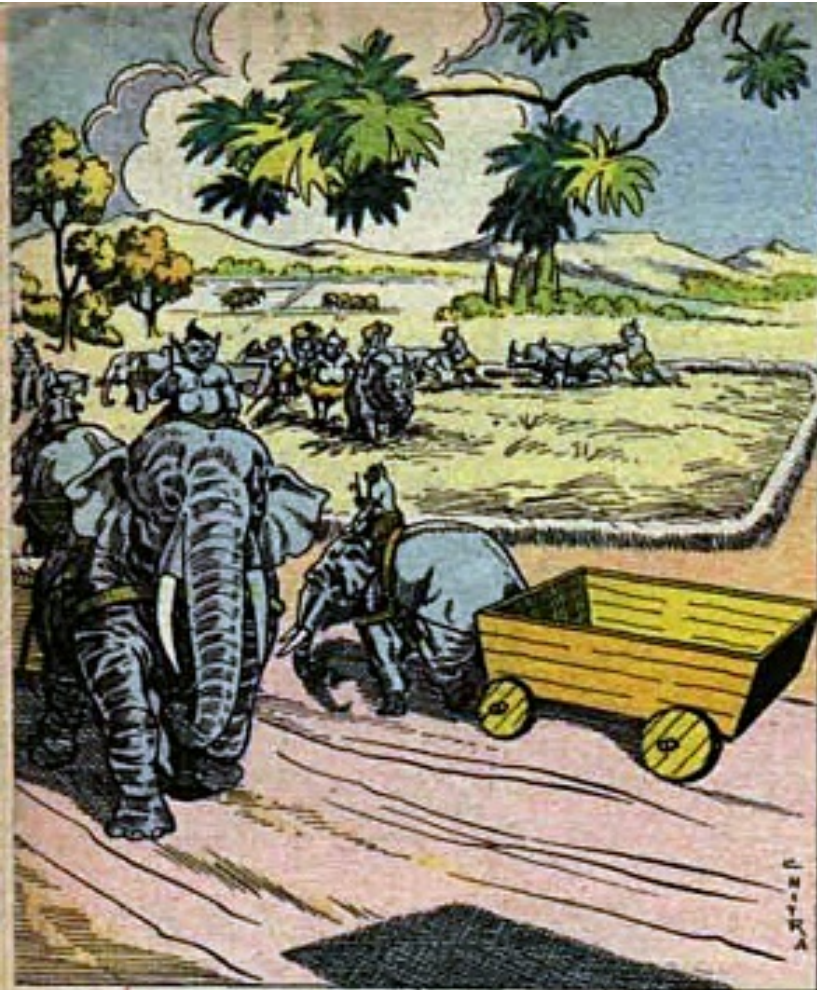
साथ बड़े होने लगे। राक्षस इन्हें विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते।

समय बीतता गया। देखते-देखते पंद्रह वर्ष बीत गये। उग्राक्ष ने राक्षसों की हिंसावृत्ति बन्द करवाकर उन्हें सभ्य बनाने का निश्चय किया। उसने अपने नेतृत्व में अनेक मानवोचित कामों का श्रीगणेश कराया। वह राक्षसोंसे जंगल कटवाकर उनके हाथों से खेती का काम कराने लगा। लेकिन महाकाय राक्षसों के लिए बैल एवं भैंसे आदि जानवर उपयोगी सिद्ध नहीं हुए। ज़मीन जोतने, फसलें घर पहुँचाने में मानवों द्वारा काम में लाये जानेवाले इन पशुओं को अपने लिए उपयोगी न देखकर बलशाली राक्षसों ने हाथी, ऊँट एवं गैंडों को हल एवं गाड़ियों में जोता और इस तरह खेती बाड़ी का काम करने लगे। राक्षसों का पुरातन स्वभाव बदलना इतना आसान काम नहीं था। पर जब नेता अपने हाथ में कोई दायित्व लेता है, तब धीरे-धीरे सब संभव होने लगता है। उग्राक्ष के नेतृत्व में राक्षस मानवोचित जीवन जीने का प्रयत्न करने लगे। जंगल के गाँवों में बसनेवाले लोगों को यह अत्यन्त आश्चर्यजनक लगा। जो राक्षस पशु-मांस ही नहीं, बल्कि नरमांस का भी भक्षण करते थे और घरों से पशुओं तथा कभी-कभी मनुष्यों को भी उठा ले जाते थे, वे कृषक बन गये—इस बात से गाँवालों को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। राक्षसों के अन्दर सभ्यता प्रवेश कर रही है, यह बात चित्रसेन के यश में चार चांद लगाने लगी। कपिलपुर राज्य सब प्रकार की संपदाओं से शोभायमान हो उठा।

अब उग्रदत्त और उसके दोनों साथी रुद्र एवं अरुद्र बीस वर्ष की आयु के सुन्दर नौजवान थे। वे तलवार चलाने, घुड़सवारी करने, धनुर्विद्या में अत्यन्त प्रवीण होगये। ये तीनों युवक मानव-संतान थे और बलशाली राक्षसों के बीच पले थे, इसलिए इनमें मानवीय गुणों के साथ-साथ राक्षसों का बल भी आगया था। ये अत्यन्त शूर, निडर और उद्यमी थे। इनके अन्दर असंभव को भी संभव कर दिखाने का उत्साह था। इन युवकों ने एक बार उग्राक्ष के मुँह से ज्वालाद्वीप के बाघचर्मधारियों के बारे में सुना, जो अक्सर कपिलपुर राज्य में हलचल पैदा कर देते

थे। इनके अन्दर बड़ी उत्सुकता पैदा हुई और इन्होंने उन बाघचर्मधारियों के बारे में अधिक जानना चाहा। वे कैसे लोग हैं और अग्निपक्षी कैसे होते हैं ? बाघचर्मधारी लोगों को ये पक्षी कहाँ मिले और ये किसप्रकार इन्हें अपना वाहन बना पाये ! उग्रदत्त, रुद्र और अरुद्र सब कुछ जानना चाहते थे। उग्राक्ष इन नवयुवकों को पूरी जानकारी तो नहीं दे सका, लेकिन उसने उन्हें काम की कुछ बातें बतायीं ।

उग्राक्ष ने उन बाघचर्मधारियों के बारे में बताते हुए कहा, "आज भी वे बाघचर्मधारी भयंकर पक्षियों पर सवार होकर रातों में जब-तब हमारे राज्य में दिखाई देते हैं। पर इधर पंद्रह वर्षों से उन्होंने कोई ऐसा उपद्रव या नुक़सान नहीं किया कि हमें ख़तरा हो। नागवर्मा और करवीर उनके नेता हैं। बहुत पहले कपिलपुर राज्य के युद्ध में उन्हें बन्दी बनाने की बहुत कोशिश की गयी, लेकिन वे बचकर भाग निकले ।"

उग्राक्ष की यह बात उग्रदत्त के मन में पूरी तरह घर कर गयी। उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि द्रोही नागवर्मा तथा उसके अनुचर करवीर के बारे में पूरी जानकारी हासिल करनी होगी। जब तक इन दोनों के बारे में पूरी बात का पता नहीं लगेगा, तब तक राज्य में भय और आशंका बनी रहेगी। सबसे पहले तो यह जानना होगा कि वे ज्वालाद्वीप में ही हैं या और कहीं ! आज भी जब ज्वालाद्वीप के निवासी और वे पक्षी यहाँ दिखाई पड़ते हैं तो इसका मतलब है कि वे कपिलपुर राज्य से अपनी शत्रुता को भूले नहीं हैं।

इन सारी बातों पर विचार करके उग्रदत्त ने अपने साथी रुद्र और अरुद्र से परामर्श करके एक योजना बनायी। उस योजना की प्रमुख बात यह थी कि रातों में यहाँ-वहाँ दिखाई पड़नेवाले किसी एक ज्वालाद्वीप निवासी को ज़िन्दा पकड़ लिया जाये। अगर ऐसा एक भी आदमी हाथ लग जाता है तो उसके द्वारा ज्वालाद्वीप के बारे में विस्तार से जानना संभव हो सकेगा। उससे यह भी मालूम हो सकेगा कि द्रोही नागवर्मा तथा करवीर जिंदा हैं या नहीं और वे कहाँ हैं ।

उग्रदत्त के मन में यह विचार भी आया कि अगर ज्वालाद्वीप के किसी बाघचर्मधारी को ज़िन्दा पकड़ना है तो जंगल के गाँवों के

निवासियों एवं राक्षसों के सहयोग की आवश्यकता है। इसके लिए यह उपाय कारगर हो सकता है कि एक भारी इनाम की घोषणा कर दी जाये। उसके प्रलोभन से ग्रामवासी और राक्षस सभी जागरूक होकर रात-दिन इस ताक़ में रहने लगेंगे कि उनके हाथ में एक ज़िन्दा बाघचर्मधारी आजाये ।

उग्रदत्त ने इस सम्बन्ध में अपने पोषक पिता उग्राक्ष से चर्चा की। उग्राक्ष ने तत्काल स्वीकृति दी और कहा, "उग्रदत्त, तुम तुरन्त यह ढिंढोरा पिटवा दो कि जो व्यक्ति किसी बाघचर्मधारी को ज़िन्दा पकड़कर लायेगा, उसे एक लाख सोने के सिक्के पुरस्कार में दिये जायेंगे। हमारे पास धन की कमी नहीं है। दुर्ग के खज़ाने में सोने के ढेर लगे हुए हैं।"

इसके बाद उग्रदत्त ने जंगल के जनपदों तथा राक्षसों की निवास-स्थान पहाड़ी घाटियों में ढिंढोरा पिटवा दिया। उस दिन के बाद ज्वालाद्वीप के बाघचर्मधारियों के बारे में हर रोज़ कोई न कोई समाचार मिलने लगा। बाघचर्मधारी रातों में अपने भयंकर पक्षियों पर सवार होकर अनेक प्रदेशों में उड़ते हुए दिखाई देते थे, पर वे कभी ज़मीन पर नहीं उतरते थे ।

ये सारे समाचार उग्रदत्त के मन को विकल बनाने लगे। उसकी समझ में नहीं आया कि बाघचर्मधारी राज्य के अन्दर किस प्रकार उपद्रव करने का प्रयत्न कर रहे हैं और रातों में गुप्तचरों की तरह क्यों घूमते हैं ? कहीं ऐसा तो नहीं कि वे दुष्ट सबकी आँख बचाकर जंगल के किसी सुनसान इलाके में उतरते हों ? वह उनकी योजना को जानना चाहता था। उनकी योजना को जाने बिना किसी भी काम को आगे बढ़ाना विशेष फलदायी नहीं हो सकता था। उग्रदत्त सोचता रहा, सोचता रहा। वह कौन सा उपाय हो सकता है जिसके आधार पर शत्रु बने बाघचर्मधारियों का सामना किया जा सके, इतना ही नहीं, उन्हें पराजित किया जा सके ।

इस शंका के समाधान के लिए यह ज़रूरी था कि उग्रदत्त स्वयं रात के समय जंगल में प्रवेश करे और किसी ऊँचे स्थान पर छिपकर पहरा दे। उग्रदत्त ने अपना यह निर्णय जब रुद्र और अरुद्र को सुनाया तो वे भी उसके साथ चलने का

उत्साह दिखाने लगे। एक दिन वे तीनों शाम के समय घोड़ों पर सवार हो दुर्ग से निकल कर जंगल की ओर चल पड़े। वे जनपदों से अलग निर्जन वन-प्रदेश में आधी रात तक चलते रहे। अभी तक उन्हें कोई सूराग़ नहीं मिल सका था। कहीं कोई बाघचर्मधारी या अग्निपक्षी दिखाई नहीं दिया था। कहीं हलका-सा भी खटका नहीं। उग्रदत्त सोचने लगा कि कहीं आज का यह पराक्रम व्यर्थ न हो जाये। उसमें बड़ी अधीरता थी कि शत्रुपक्ष किसी भी तरह उसकी पकड़ में आजाये। रुद्र और अरुद्र उसके साथी थे, बहादुर भी थे और उग्रदत्त के प्रति वफ़ादार भी थे। इसीलिए उसने उन्हें साथ लिया था कि कोई ठोस काम बन जाये। बहुत रात बीत चुकी थी। इस तरह वे कब तक चलते रहेंगे? उनका दुर्ग काफ़ी पीछे छूट गया था। उन्हें सुबह होने तक वापस लौटना था। कितना अच्छा होता अगर आज की रात थोड़ी सी भी कामयाबी हाथ लग जाती। पर सोचने से ही तो सब कुछ नहीं हो जाता।

आख़िर वे थक गये। उनके घोड़े भी थक चुके थे। उन्होंने निर्णय किया कि सुबह होने तक समीप के एक सालवृक्ष के नीचे विश्राम करें। इसके बाद वे तीनों घोड़ों पर से उतर पड़े और उन्हें अलग-अलग वृक्षों से बांध दिया। जब वे उस वृक्ष के नीचे पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वृक्ष का ऊपरी भाग रोशनी से धक-धक चमक रहा है।

सबसे पहले उग्रदत्त की नज़र इस चकाचौंध पर पड़ी थी। उसने विस्मय-विमूढ़ होकर कहा,

"ओह, यह तो भयंकर पक्षी है। उस पर सवार बाघचर्मधारी के हाथ में कोई चीज़ है जो इस तरह चमक रही है।"

तब तक रुद्र और अरुद्र भी यह दृश्य देख चुके थे। अब तीनों ने देखा कि भयंकर पक्षी पश्चिमी दिशा में कहीं दूर चला जा रहा था और उसके जानेवाले मार्ग में प्रकाश फैल रहा था।

"मैं वृक्ष की सबसे ऊँची शाखा पर चढ़कर पता लगाता हूँ कि हम इस समय किस इलाक़े में हैं।" रुद्र ने कहा। उग्रदत्त और अरुद्र ने अपनी स्वीकृति दी।

रुद्र साल वृक्ष पर बड़ी फुरती से चढ़ गया और थोड़ी ही देर में हाँफता हुआ नीचे उतर आया। उग्रदत्त उसकी व्यग्रता का कारण पूछना

चाहता था कि रुद्र ने पश्चिमी दिशा की ओर हाथ का संकेत कर कहा, "यहाँ से कुछ ही दूरी पर किसी का बहुत बड़ा क़िला है। क़िले के भीतर कहीं रोशनी का निशान तक नहीं है। बुर्जों पर या क़िले की दीवार पर कहीं कोई संतरी भी दिखाई नहीं देता।"

रुद्र को इस तरह उद्विग्न देख उग्रदत्त ने पूछा, "तो तुम्हारा विचार है कि बाघचर्मधारी उस अंधेरे क़िले में उतर गया है ?"

"निश्चित रूप से ऐसा कहना तो बहुत मुश्किल है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उस क़िले में रहनेवाले लोग बड़े लापरवाह हैं। थोड़ी देर पहले हमने जिस बाघचर्मधारी को देखा, अगर वह उस क़िले में या उसके परिसर में कहीं उतरा है, तो वहाँ इस बात पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। न किसी ने कोई सूचना दी, न चेतावनी। कहीं कोई हिलता-डुलता भी नज़र नहीं आया।" रुद्र ने कहा।

उग्रदत्त के मन में भी कुछ इसी तरह की उधेड़बुन हो रही थी। वह सोचने लगा कि अपने दुर्ग की सुरक्षा के बारे में इतनी असावधानी दिखानेवाला कपिलपुर का सामंत कौन है ? पर सुबह होने के बाद ही उसे इस प्रश्न का उत्तर मिल सकता था। सूर्योदय होते ही उसे सर्वप्रथम इस सामंत राजा को चेतावनी देनी है और बाघचर्मधारियों के द्वारा होनेवाले ख़तरे से सावधान करना है।

इसके बाद यात्रा की थकान के कारण वे तीनों उस वृक्ष के नीचे लेट गये और जल्दी ही उन्हें गहरी नींद ने आ घेरा। सूर्योदय हुआ। जंगल में पक्षियों का कलरव गूँजने लगा, जंगली जानवरों की गरज सुनाई देने लगी। इन तीनों के घोड़े भी हिनहिना उठे। उग्रदत्त, रुद्र एवं अरुद्र चौंककर उठ बैठे। सारा जंगल सफ़ेद रोशनी से भरा हुआ था। आकाश को छूरहे बड़े-बड़े वृक्ष और उनकी विशाल शाखाएँ तथा एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूद रहे बन्दर, रंग-बिरंगे पक्षी, यह सब बड़ा मनोहर लग रहा था।

"यह इलाक़ा हमारे दुर्गवाले वन-प्रदेश से कहीं अधिक सुन्दर है।" उग्रदत्त ने कहा।

"इसीलिए कोई सामंत राजा यहाँ दुर्ग बनाकर रहता होगा। बाघचर्मधारियों के लिए भी यह

CHITRA

अत्यन्त आसान है कि वे इस एकान्त निर्जन वन-प्रांत में सबकी आँख बचाकर अपनी गतिविधियां चालू रख सकें।" रुद्र ने कहा।

बाघचर्मधारियों का नाम सुनकर उग्रदत्त उठ खड़ा हुआ। उसके साथ उसके दोनों साथी भी खड़े होगये। उन्होंने उग्रदत्त से पूछा, क्या हम अपने घोड़े ले आयें ?"

"घोड़ों की क्या ज़रूरत है ? रुद्र, क्या तुम बता सकते हो कि क़िला यहाँ से कितनी दूर होगा ?" उग्रदत्त ने पूछा।

"मेरा ख्याल है आधा कोस से भी कम होगा।" रुद्र ने कहा।

"दूरी अधिक होने पर भी हमें क्या फर्क़ पड़ता है ! घोड़ों पर सवार होना ठीक रहेगा।" अरुद्र ने कहा।

इसके बाद तीनों वहाँ गये, जहाँ उनके घोड़े बंधे थे। वे उनके रस्से खोलने लगे, तभी पास ही उन्हें कोई आर्त्तनाद सुनाई दिया।

उस आर्त्तनाद को सुनकर तीनों मित्र चकित रह गये। क्योंकि वह आर्त्तनाद एक नारी का था।

"कोई स्त्री शायद किसी ख़तरे में फँस गयी है।" रुद्र ने कहा।

"हाँ ! जल्दी करो !" यह कहकर उग्रदत्त ने म्यान से तलवार खींच ली और जिधर से वह आवाज़ आयी थी, उस दिशा में दौड़ पड़ा।

तीनों साथी थोड़ी ही दूर पहुँचे थे कि उन्होंने देखा कि एक युवती को बाघचर्मधारी पकड़ने की कोशिश कर रहे हैं और उस सुन्दर युवती ने रेशमी वस्त्र एवं बहुमूल्य आभूषण धारण कर रखे हैं। उस युवती के साथ दो दासियां भी थीं, वे उन बाघचर्मधारियों के हाथों से अपने को बचाती हुई चिल्ला रही थीं—"हमें बचाओ !"

"डरो मत ! हम तुम्हें बचाने के लिए आ गये हैं !" उग्रदत्त, रुद्र और अरुद्र ने चिल्लाकर उन नारियों को अभयदान दिया। इनकी आवाज़ सुनकर बाघचर्मधारी अचानक इन तीनों पर कूद पड़े। ये तीनों लौटकर वार करते कि इससे पहले ही बाघचर्मधारियों ने इन्हें बेहथियार कर दिया और रस्सों से इनके हाथ-पैर बाँधकर इन्हें भयंकर पक्षियों की ओर खींचकर ले गये।

(क्रमशः)

ब्रह्मराक्षस

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये। पेड़ पर से शव उतार कर उन्होंने कंधे पर डाला और सदा की भाँति चुपचाप श्मशान और चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन, यह श्मशान ज़हरीले सर्पों तथा भूत-प्रेतों का अड्डा है। इस श्मशान में आधी रात के समय प्राणों का मोह त्याग कर आप जो श्रम उठा रहे हैं, वह देश-कल्याण की भावना से प्रेरित है अथवा अपनी किसी स्वार्थ-सिद्धि के लिए? स्वार्थ से प्रेरित होकर किया गया कोई भी कार्य उत्तम फल प्रदान नहीं करता। इसके उदाहरण स्वरूप मैं आपको सागर नाम के एक नवयुवक की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने की लिए सुनिये!"

बेताल कहानी सुनाने लगाः

भरतपुर गाँव में भोलासिंह नाम का एक किसान रहता था। उसके प्रेमनाथ नाम का एक मित्र था। पर असमय ही प्रेमनाथ की मृत्यु हो

बेताल कथा

गयी। कुछ ही दिनों बाद उसकी पत्नी भी चल बसी। उनका इकलौता पुत्र सागर सात वर्ष की आयु में ही अनाथ होगया। भोलासिंह इस बालक को अपने पास ले आया और उसे बड़ा किया। भोलासिंह के एक बेटी भी थी, नाम था सुनीता। भोलासिंह सागर के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर निश्चिंत होने की सोच रहा था।

सागर बड़े स्वच्छ-सरल मन का युवक था। भरतपुर गाँव के चौधरी सुखवीर को देश के सेनापति का आश्रय प्राप्त था और वह अपने इस सम्बन्ध के बल पर प्रजा को मुसीबत में डालकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि किया करता था। सागर से यह सब सहन नहीं हुआ। वह एकबार अवसर पाकर राजधानी पाटननगर में गया और चौधरी सुखवीर के कारनामों के बारे में राजा शूरसिंह से शिकायत की।

जब सेनापति को सागर की इस करतूत का पता लगा तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा। उसने सागर पर यह अभियोग लगाया कि उसने राज्य के ख़ज़ाने को लूटने का षडयंत्र रचा है और उसे राजा शूरसिंह के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

राजा शूरसिंह किसी अन्य कारण से उस समय क्रोध में भरे बैठे थे। उन्होंने बिना किसी सुनवाई के अपने राजसेवकों को आदेश दिया, "इस अपराधी को चीतोंवाले जंगल में ले जाकर एक पेड़ से बांध दो!"

राजसेवक राजा के आदेशानुसार सागर को चीतोंवाले बन में ले गये और उसे एक बरगद से बांध कर चले गये। सागर ने अपने प्राणों की आशा त्याग दी। तभी उसे बरगद की जटाओं के बीच से यह आवाज़ सुनाई दी—"ओह प्यास! प्यास!"

सागर चकित होकर इधर-उधर ताकने लगा, तभी एक ब्रह्मराक्षस उसके सामने प्रकट होकर हाँफते हुए बोला, "हे मानव, तुम मेरी प्यास बुझाओ! मैं प्यास से तड़प रहा हूँ।"

ब्रह्मराक्षस को सामने देखकर सागर को डर नहीं लगा। उसने सवाल किया, "पास में ही विशाल नदी बह रही है। क्या तुम्हें दिखाई नहीं देती? मुझसे पानी क्यों माँगते हो?"

ब्रह्मराक्षस ने दयनीय स्वर में उत्तर दिया, "हे मानव, मैं शाप के कारण ऐसा नहीं कर सकता।

मेरे स्पर्श से सारा पानी सूख जायेगा। मैं तुम्हारा बन्धन खोल देता हूँ। तुम मेरी प्यास बुझा दो !"

यह कहकर ब्रह्मराक्षस ने सागर का बन्धन खोल दिया और मिट्टी के एक पात्र की सृष्टि करके उसे सागर के हाथ में दे दिया।

सागर पानी भर लाया और ब्रह्मराक्षस के मुँह में पानी डालकर उसकी प्यास बुझायी।

सागर के उपकार से संतुष्ट होकर ब्रह्मराक्षस ने उससे पूछा, "हे मानव, अब बताओ, तुम्हें क्या कष्ट है ?"

सागर ने ब्रह्मराक्षस को सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा, "ब्रह्मराक्षस, भले ही मेरा हित हो या न हो, पर ग्रामवासियों के हित के लिए उन दुष्टों को दंड मिलना ही चाहिए।

ब्रह्मराक्षस अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला, "जो मानव अपना स्वार्थ सिद्ध नहीं करना चाहता और दूसरों का कल्याण चाहता है, ऐसे श्रेष्ठ मनुष्यों की गणना में तुम आते हो, इसलिए मैं अवश्य ही तुम्हारी मदद करूँगा।" यह कहकर ब्रह्मराक्षस ने हवा में हाथ फैला दिये। उसके हाथ में कुछ बहुमूल्य आभूषण आगये। उन्हें सागर के हाथ में देकर वह बोला, "ये सारे आभूषण पाटननगर की राजकुमारी चित्रलेखा के हैं। तुम इन आभूषणों को माध्यम बनाकर अपनी बुद्धिमत्ता और चतुराई से अपने दुश्मनों से बदला लो !"

सागर उन आभूषणों को लेकर गाँव लौट आया और उन्हें आधी रात के समय चौधरी सुखवीर के पिछवाड़े से घर के अन्दर डाल दिया। चौधरी की पत्नी कमला उन गहनों को देखकर फूली न समायी और उन्हें पहनकर इतराने लगी। सारे गाँववालों को भी उसने अपने गहने दिखाये।

उधर राजकुमारी चित्रलेखा के आभूषणों के चोरी जाने से राजभवन में तहलका मच गया। राजा के गुप्तचर आभूषणों के चोर का पता लगाने के लिए सर्वत्र घूमने लगे। आख़िर भरतपुर के चौधरी की पत्नी के शरीर पर राजकुमारी के आभूषणों को उन्होंने पहचान लिया और इसकी सूचना राजा को दी। राजा ने अपने सिपाहियों को भेजकर चौधरी सुखवीर को गिरफ्तार कर लिया। सेनापति अजयसिंह ने बड़ी कोशिश करके चौधरी को छुड़ा तो लिया, पर अब चौधरी राज्य

चोर-डाकुओं को कैसे पकड़ोगे ? मैं तुम्हें तीन दिन का समय देता हूँ। तुम उन्हें पकड लाकर मेरे हाथ सौंप दो ! ऐसा न करने पर मैं तुम्हें फाँसी के तख़्ते पर चढ़ा दूँगा ।"

सागर समझ गया कि सुखवीर और सेनापति मिलकर फिर से उसे फँसाने की कोशिश कर रहे हैं। वह तुरन्त चीतोंवाले जंगल में उसी बरगद के पास पहुँचा। उस समय ब्रह्मराक्षस नदी के किनारे बैठा प्यास के कारण तड़प रहा था ।

उसने सागर को देखते ही कहा, "पहले तुम मेरी प्यास बुझाओ। उसके बाद बाक़ी सारी बातें हम आराम से करेंगे ।"

सागर ने ब्रह्मराक्षस की प्यास बुझाकर सारा वृत्तान्त सुनाया और कहा, "ब्रह्मराक्षस, मुझे अपने प्राणों की कोई चिन्ता नहीं है। राज्य की प्रजा में चोरों-डाकुओं का आतंक है, प्रजा मुसीबत में है। चोर-डाकुओं को पकड़कर प्रजा की सुरक्षा का प्रबन्ध करना है ।"

"सागर, तुम्हारी निस्वार्थ बुद्धि से सैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।" यह कहकर ब्रह्मराक्षस पास की झाड़ियों में गया और वहाँ से दो बाघों को खींच लाया। उन्हें सागर के सामने खड़ा कर बोला, "तुम इन्हें अपने साथ ले जाओ, चोर पकड़े जायेंगे ।"

बाघों को देखकर सागर डर महसूस करने लगा। तभी दोनों बाघ नये वर-वधू के रूप में परिवर्तित होगये। वधू आभूषणों के बोझ से दबी जा रही थी। वर पीले वस्त्र धारण किये हुए था।

द्वारा नियुक्त चौधरी न रहा ।

पदच्युत होने पर सुखवीर के दिल में बदले की आग भड़क उठी। वह सागर को नष्ट करने के लिए सेनापति के साथ मिलकर षडयंत्र रचने लगा ।

उन्हीं दिनों राज्य में चोरियों और डकैतियों का बोलबाला होगया। अब सेनापति ने सागर का अंत करने के विचार से एक दाँव लगाया। उसने राजा शूरसिंह को सलाह दी, "महाराज, भरतपुर गाँव का सागर नाम का युवक चोर-डाकुओं को पकड़ने में सिद्धहस्त है। आप कृपा करके उसे बुलवा लीजिए और उसकी सहायता लीजिए !"

राजा शूरसिंह ने सागर को बुलवाकर आदेश दिया, "सागर, मैं नहीं जानता कि तुम

सागर वर-वधू को साथ लेकर चल पड़ा। संध्या के समय वह राजधानी के निकट की एक सराय में ठहर गया।

रात का दूसरा प्रहर था कि चार चोरों ने हमला बोल दिया और वे वधू के शरीर से आभूषण उतारने लगे। पर दूसरे ही क्षण वर-वधू अपने असली बाघ रूप में आगये और गर्जना करते हुए चोरों पर टूट पड़े और अपने पंजों से उन्हें घायल करके अंधेरे में भाग गये।

इस हंगामे को देखकर सराय का मालिक तथा अन्य यात्री जाग उठे और चोरों के साथ सागर को भी पकड़कर राजा के पास लेगये।

राजा ने धमकी दी कि अगर चोर सच्ची बात नहीं बतायेंगे तो उन्हें अनेक यातनाएं देकर मार डाला जायेगा। चोरों ने सच्ची बात उगल दी कि वे सेनापति अजयसिंह और सुखवीर के कहने से चोरी-डकैती करते हैं।

राजा शूरसिंह कुपित हो उठे। उन्होंने तत्काल सेनापति और सुखवीर को कारागार में डलवा दिया और सागर को सेनापति के पद पर नियुक्त कर दिया।

इस घटना को अभी कुछ ही दिन बीते थे कि वर्षा ऋतु आरंभ होगयी। कई दिन तक लगातार भारी वर्षा होती रही, परिणाम स्वरूप सारा राज्य जलमग्न हो गया। नदी-नाले उमड़ पड़े और गाँव के गाँव डूब गये।

राज्य को इस प्रकार दुर्दशाग्रस्त देखकर सागर ने ब्रह्मराक्षस के पास जाकर निवेदन किया कि किसी भी तरह राज्य को इस विपदा से उबार ले।

ब्रह्मराक्षस सागर की परहित कामना से प्रसन्न होकर सागर के साथ चल पड़ा। जैसे ही ब्रह्मराक्षस ने बाढ़ से उफनते नदी-नालों का स्पर्श किया, सबके सब सूख गये। ब्रह्मराक्षस वर्षा के समाप्त होने तक सागर के साथ ही रहा और फिर अपने निवास को लौट गया।

सागर ने इस बार भी राज्य को ख़तरे से बचा लिया। राजा शूरसिंह सागर की गुणवत्ता से प्रभावित होते चले गये और उन्होंने अपनी पुत्री राजकुमारी चित्रलेखा का विवाह सागर के साथ धूमधाम से संपन्न कर दिया।

कुछ दिन सूखपूर्वक निकल गये। तब एक दिन सागर ब्रह्मराक्षस से मिलने के लिए बरगद के पास पहुँचा। उसे देखकर ब्रह्मराक्षस क्रोध से

चीत्कार कर उठा और बोला, "अरे दुष्ट मानव, प्यास के कारण भले ही मुझे कितना भी कष्ट क्यों न सहना पड़े, पर मैं तुमसे पानी नहीं माँगूगा। पर तुम अब कभी किसी सहायता की याचना लेकर मेरे पास मत आना। मैं मनुष्य जाति से थक गया हूँ। अब मैं कभी किसी मानव की दृष्टि में नहीं आऊँगा।" यह कहकर ब्रह्मराक्षस अदृश्य हो गया।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर विक्रमार्क से कहा, "राजन, ब्रह्मराक्षस ने पहले हमेशा सागर से पानी माँगा और उसकी पूरी सहायता की। लेकिन जब सागर ब्रह्मराक्षस से मिलने गया तो उससे क्रोधभरे वचन बोले और उसने यह कहकर अपनी घृणा व्यक्त की कि अब वह किसी मानव की दृष्टि में भी नहीं पड़ेगा। प्रश्न उठता है कि ब्रह्मराक्षस सारी मानवजाति से विरक्त होकर अदृश्य क्यों होगया? इस संदेह का समाधान यदि आप जानकर भी न करेंगे तो आपका सिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।"

इसके उत्तर में विक्रमार्क ने कहा, "पहली घटना से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ब्रह्मराक्षस ऐसे किसी मनुष्य की सहायता अवश्य करना चाहता है जो दूसरों के हित को दृष्टि में रखता है और स्वार्थी नहीं है। सागर में उसने यह बात पायी और उसकी सहायता की। ब्रह्मराक्षस को सागर ने अपने बचपन से लेकर बाद तक की सारी कहानी बता दी थी। भोलासिंह ने सागर को पाल पोसकर बड़ा किया था और उसके मन में इस बात की प्रबल कामना थी कि वह उसे अपना जामाता बनायेगा। किन्तु सागर सेनापति बनने के बाद अपने भूतकालीन जीवन को बिलकुल भूल गया। न उसे भोलासिंह का उपकार याद रहा, न सुनीता का ध्यान आया। उसने स्वार्थ से प्रेरित होकर राजकुमारी चित्रलेखा के साथ विवाह कर लिया। सागर को भी स्वार्थग्रस्त होते देखकर ब्रह्मराक्षस को बड़ी निराशा हुई और उसने मानव मात्र से दूर रहने का निश्चय कर लिया।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः पेड़ पर जा बैठा।

(कल्पित)

पक्षपात

कांचनदेश के राजा कुमारवर्मा अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि थे। राज गद्दी पर बैठने के तुरन्त बाद उन्होंने राजकर्मचारियों की कार्य-प्रणाली पर स्वयं निगरानी रखना प्रारंभ किया।

एक दिन राजा कुमारवर्मा उद्यान में टहल रहे थे। तब उन्होंने एक माली को देखा। सिंचाई के उसके तरीक़े को देखकर राजा उसके नौसिखियेपन को तुरन्त समझ गये।

राजा कुमारवर्मा उसके निकट गये और पूछा, "इसके पहले मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा है। यहाँ पर जो माली काम करता था, वह कहाँ है ?"

"महाराज, उस माली की मौत होगयी है। इसके बाद प्रमुख उद्यानपाल ने मुझे उसके स्थान पर नियुक्त किया है।" नया माली बोला।

"इस काम पर लगने से पहले तुम क्या किया करते थे ?" राजा ने पूछा।

"महाराज, मैं उद्यानपाल के घर काम किया करता था।" नये माली ने जवाब दिया।

इसके बाद राजा कुमारवर्मा ने उससे कुछ नहीं पूछा और सीधे राजमहल को लौट गये।

दूसरे दिन राजा ने नगरपाल, राजमहल के पहरेदारों के नायक तथा अन्य विभागों के प्रमुख लोगों को बुलवाकर कहा, "मैं एक नये अंगरक्षक को नियुक्त करना चाहता हूँ। उसमें शारीरिक बल तो हो ही, पर जागरूकता, बुद्धिमत्ता और साहस भी हो। तुम लोगों की जानकारी में अगर कोई ऐसा व्यक्ति हो तो बताओ !"

एक सप्ताह के अन्दर तीन राज्याधिकारी राजा कुमारवर्मा से अलग-अलग मिले। उनके साथ अंगरक्षक के पद के लिए आये कुछ युवक भी थे। राजा ने हर एक से कुछ प्रश्न पूछे और अपना निर्णय बाद में देने का आदेश देकर उन्हें भेज दिया।

· राधिका रमण

इसके बाद राजा कुमारवर्मा ने एक विशेष सभा बुलायी। राजा कुमारवर्मा ने सभा को सम्बोधित कर कहा, "मैंने कुछ अधिकारियों के सम्मुख यह इच्छा प्रकट की थी कि मुझे एक नये अंगरक्षक की आवश्यकता है। राज्य के वे प्रमुख अधिकारी कुछ युवकों को अंगरक्षक के पद के योग्य बताकर मेरे पास ले आये। सच तो यह है कि मुझे अंगरक्षक की कोई आवश्यकता नहीं है। उच्च अधिकारियों के चरित्र की परीक्षा लेने के लिए ही मैंने ऐसा किया था।"

राजा की बातें सुनकर सारे सभासद विस्मित हो उठे। तब मंत्री मंगलसेन ने राजा से पूछा, "ऐसा प्रतीत होता है कि महाराज ने उच्च अधिकारियों की जो परीक्षा ली है, उसका अवश्य ही राज्य की व्यवस्था से सम्बन्ध है। क्या हम सब इस विषय में अधिक जान सकते हैं?"

राजा कुमारवर्मा ने मुस्करा कर अपने माली का समाचार सुनाया। फिर एक क्षण रुककर कहा, "बागवानी में थोड़ा भी अनुभव न रखनेवाला व्यक्ति उद्यानपाल की कृपा से माली के पद पर नियुक्त कर दिया गया है। हम बड़ी आसानी से अनुमान लगा सकते हैं कि ऐसे व्यक्ति के हाथों चन्द दिनों में ही उद्यान की कैसी दुर्दशा होगी?"

राजा के मुँह से यह बात सुनकर उद्यानपाल ने लज्जित होकर अपना सिर झुका लिया। राजा कुमारवर्मा ने उस पर तीव्र दृष्टि डालकर सबसे कहा, "उद्यानपाल जैसा एक छोटा राज्याधिकारी जब अपने लोगों के प्रति पक्षपात दिखाकर उन्हें राजकर्मचारी के पद पर नियुक्त कर सकता है तो ऊँचे पदों पर बैठे अधिकारियों का तो कहना ही क्या है? आज से यह नियम लागू किया जाता है कि राज्य में छोटे से छोटे पद के लिए भी ढिंढोरा पिटवाया जायेगा, ताकि प्रजा के लोग स्वतंत्र रूप से उम्मीदवार बनकर उस पद के लिए अपने को योग्य प्रमाणित कर सकें।"

राजा कुमारवर्मा ने अपने इस निर्णय को कानून का रूप दिया और कुछ ही दिनों में अधिकारियों के भाई-भतीजावाद की परम्परा को तोड़कर राज्य से पक्षपात की भावना को निर्मूल कर दिया।

हमारे देश के स्मारक

गोल गुम्बज
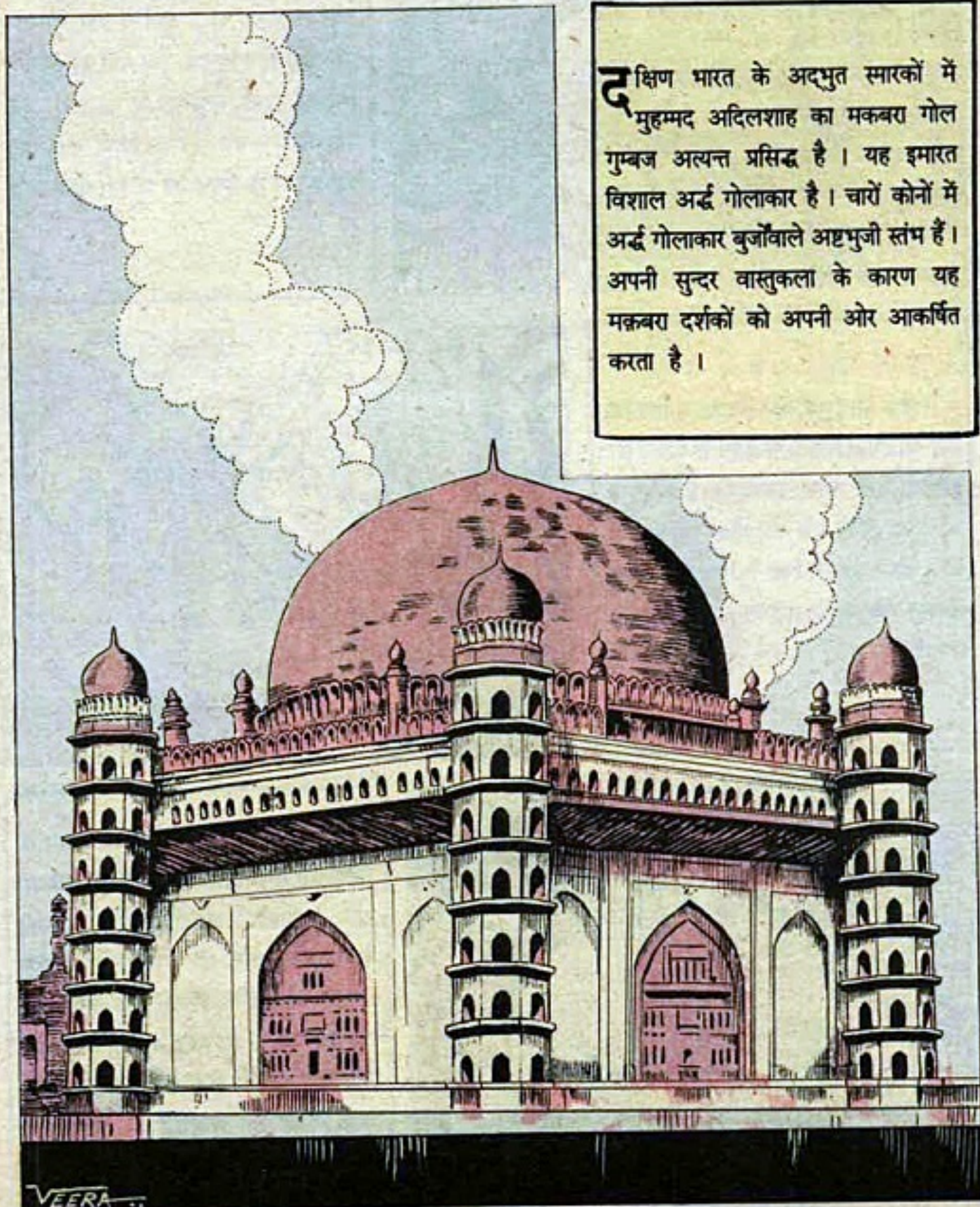
तुर्की सुलतान के कनिष्ठ पुत्र यूसुफ अदिलशाह ने बीजापुर अदिलशाह-वंश स्थापित किया था। तुर्की में जब सुलतान मुराद की मौत होगयी, तब वहाँ की रीति के अनुसार उसके ज्येष्ठ पुत्र के अलावा अन्य पुत्रों का गुप्त रूप से संहार किया जाता था। कनिष्ठ होने से यूसुफ को भी मार दिया जाना था।

मंत्रियों ने यूसुफ की माता को बताया कि गद्दी को लेकर भाइयों के बीच लड़ाई न हो, इसलिए ऐसा करना आवश्यक है। युसुफ की माता अपने पुत्र को खोना नहीं चाहती थी। अपने पुत्र की रक्षा के लिए उसने कुछ विश्वस्त सेवकों की सहायता से एक योजना बनायी।

उसका एक विश्वासपात्र सेवक भारत के लिए उसी समय प्रस्थान कर रहे एक व्यापारी दल से मिला। उस दल में यूसुफ की रूपरेखाओं वाला एक गुलाम था। उस गुलाम को ख़रीद लिया गया और उसे शहज़ादे यूसुफ के वस्त्र पहनाये गये और उसे गुप्त रूप से राजमहल में पहुँचा दिया गया। उसी रात गुलाम युवक को यूसुफ समझकर बधिकों ने उसकी हत्या कर दी।

यूसुफ की मौत का समाचार जब तक चारों तरफ़ फैला, तब तक वास्तविक यूसुफ भारत पहुँच गया था। उस व्यापारी दल के नेता ने यूसुफ की शिक्षा-दीक्षा का दायित्व अपने ऊपर लिया।
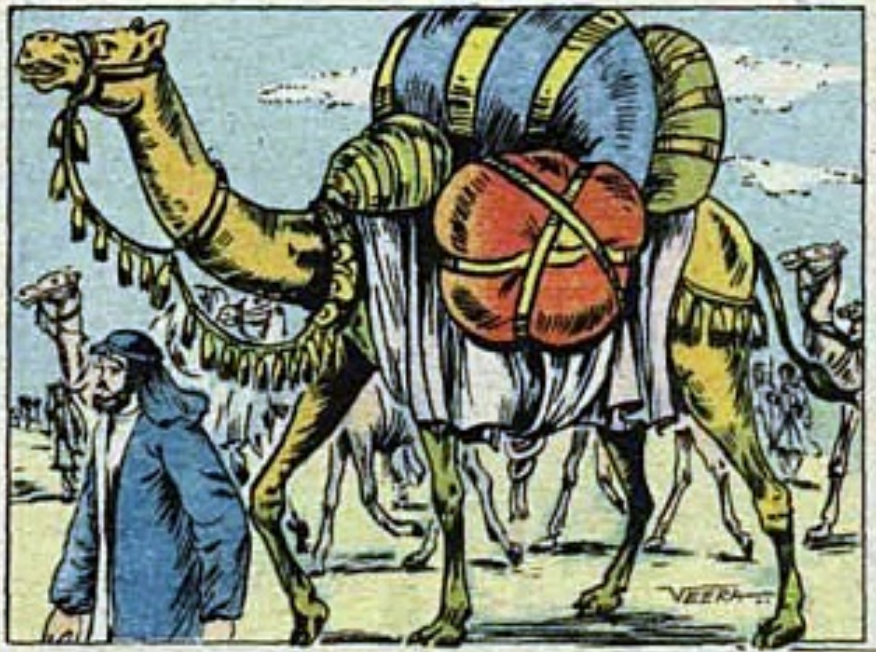
कुछ ही समय में यूसुफ एक सुन्दर राजवंशी युवक के रूप में तैयार होगया। इसके बाद वह बीदर के दरबार में किसी पद पर नियुक्त हुआ। धीरे-धीरे वह ऊँचे पद प्राप्त करता गया और बीजापुर का सूबेदार बन गया। १४८८ में उसने अपने को अदिलशाह उपाधि से अलंकृत किया और बीजापुर को एक स्वतंत्र सूबा घोषित कर दिया।

अदिलशाहवंशी सुलतानों ने अनेक अद्‌भुत भवनों का निर्माण कराया है। उनके द्वारा निर्मित भवनों में गोल गुम्बज विश्व विख्यात है। परिमाण की दृष्टि से यह मक़बरा विश्व में द्वितीय स्थान पर है। इसके दालान में जब कोई मनुष्य चलता है तो ऐसी ध्वनि होती है, मानो भारी सेना चल रही हो।
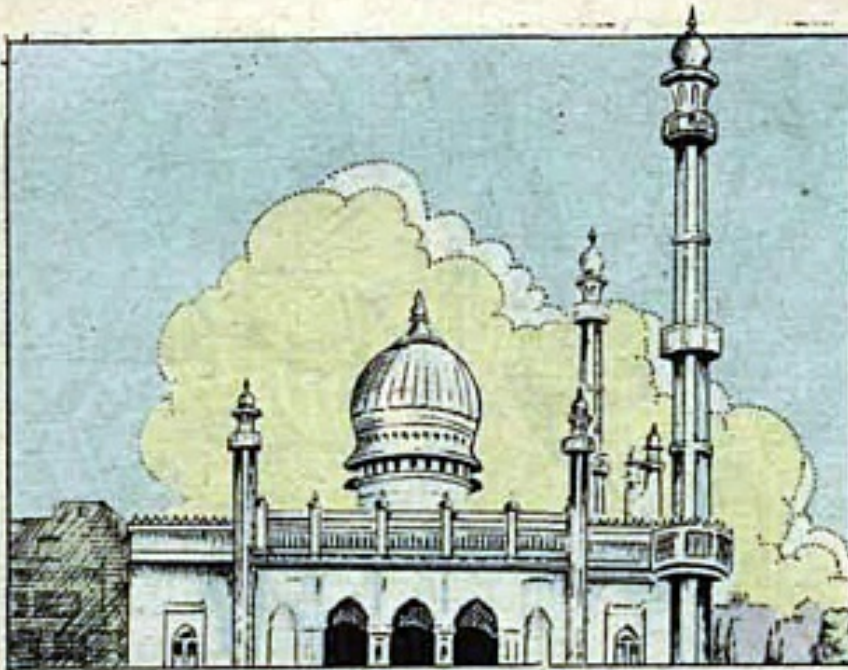
बीजापुर का एक और ख़ास भवन है—नगर की प्रधान मस्ज़िद, जो जामा मस्ज़िद कहलाती है। अली अदिलशाह के समय में इसके निर्माण का कार्य आरंभ हुआ था। इस मस्ज़िद का निर्माण इस भाँति किया गया है, ताकि २,२५० भक्त एक साथ नमाज़ पढ़ सकें।

नगर की पश्चिमी दिशा में 'मालिक-इ-मैदान' नाम से प्रसिद्ध भारी तोप है। बीजापुर तथा अन्य अनेक प्रदेशों में हुए अनेक युद्धों में इस तोप का उपयोग किया गया था।

अफ़ज़ल ख़ाँ के लिए जो मक़बरा बनाया गया था, उसमें उसका शरीर नहीं दफ़नाया गया। बीजापुर सुलतान की ओर से अफ़ज़ल ख़ाँ को शिवाजी को धोखे से मारने के लिए भेजा गया था। पर उस दुष्ट के धोखे को शिवाजी समझ गये और उसे अपने 'बाघनखों' से फाड़कर मार डाला तथा वहीं पर गाड़ दिया।

स्मृति-चिह्न

सिरिपुर नाम का गाँव एक पहाड़ की तलहटी में था। उस गाँव के चारों ओर फलों के बगीचे थे, इसलिए वह गाँव देखने में अत्यन्त मनोहर एवं स्वास्थ्यप्रद था। प्रायः संपन्न परिवारों के लोग स्वास्थ्य सुधारने के लिए वहाँ आया करते थे। जब कभी किसी की सेहत ख़राब होती, शुभचिंतक लोग यही सलाह देते, जाओ, जाकर कुछ दिन सिरिपुर में बिता आओ।

सिरिपुर में नीलमंणि नाम का एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति.था। उसके अपना कहलानेवाला कोई नहीं था। उस गाँव में जब कभी कोई व्यक्ति स्वास्थ्य-सुधार के लिए आता, नीलमणि उसकी काफ़ी मदद करता। इस तरह के स्वास्थ्य पर्यटक लोग जब सिरिपुर से लौटने लगते, तब नीलमणि बड़े अदब के साथ उनसे कहता, "महाशय, आपकी इच्छा हो तो इस ग़रीब को अपनी यादगारी के लिए कुछ देते जाइए, कोई स्मृति-चिन्ह।"

वे लोग नीलमणि को या तो कुछ पैसा दे देते या कोई क़ीमती चीज़ देकर चले जाते।

एक बार सिरिपुर में केशव चक्रवर्ती नाम का एक संपन्न व्यक्ति आया। जब भी आवश्यकता होती, नीलमाणि उनके छोटे मोटे काम कर दिया करता। केशव चक्रवर्ती उसे जब-तब कुछ पैसे भी दे दिया करता।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। एक दिन केशव चक्रवर्ती ने नीलमणि से कहा, "नीलमणि, तुम्हारे गाँव की आब हवा गज़ब की है। मैं अब पूर्ण स्वस्थ हो गया हूँ और शीघ्र ही अपने गाँव लौट जाऊँगा।"

नीलमणि ने अंपनी आदत के अनुसार सदा की भाँति कहा, "महाशय," यहाँ अनेक संपन्न

विद्यासिन्हा
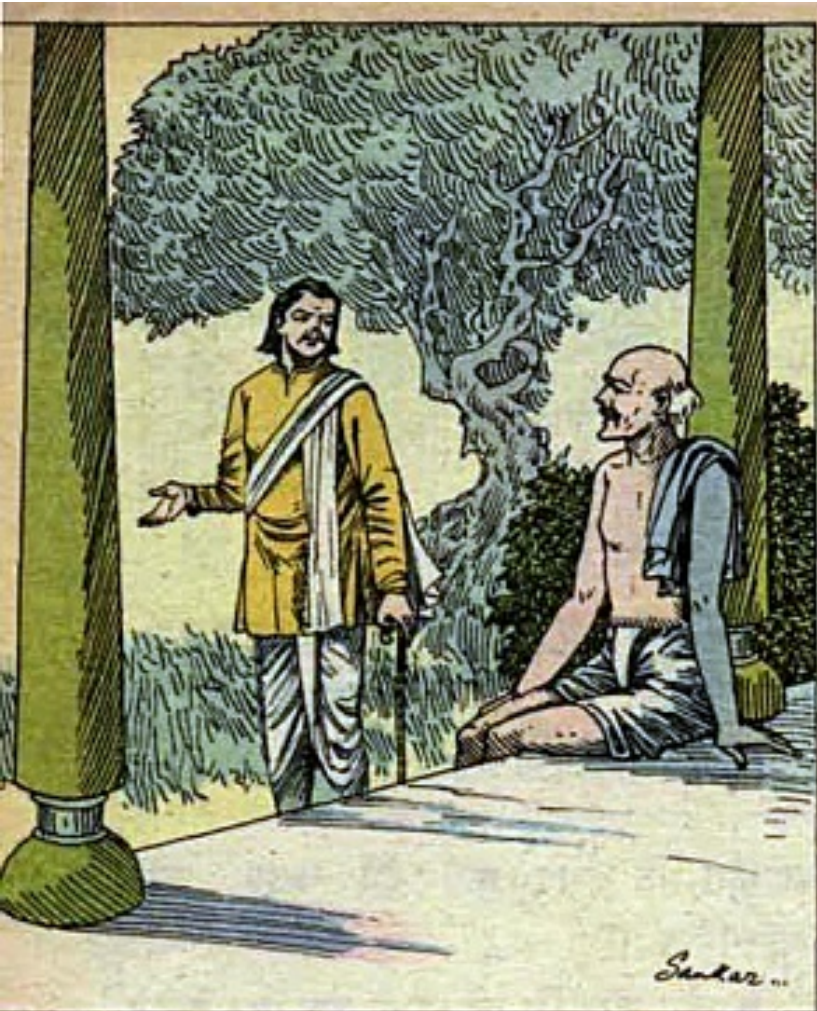
व्यक्तियों का आगमन होता है। वे लोग यहाँ से जाते समय मुझे अपनी यादगारी में कोई न कोई चीज़ दे जाते हैं। मेरी यह अंगूठी, चांदी का यह कड़ा, घर में रखा लकड़ी का सन्दूक—यह सब कुछ मुझे उन्हीं लोगों से सौगात में मिला है।"

केशव चक्रवर्ती ने मुस्कराकर नीलमणि से कहा, "नीलमणि, मैं तुम्हें उन सबसे बढ़कर क़ीमती चीज़ देकर जाऊँगा।"

यह सुनकर नीलमणि की खुशी का ठिकाना न रहा। वह मन ही मन सोचने लगा, वह कौन-सी वस्तु हो सकती है जो केशव चक्रवर्ती महाशय उसे देकर जायेंगे? वह उनके जाने के दिन का इन्तज़ार करने लगा।

एक दिन नीलमणि को पड़ोसी गाँव में कोई काम आ पड़ा। वह गया और चार दिन बाद अपना काम पूरा करके लौट आया। आने पर उसे मालूम हुआ कि केशव चक्रवर्ती तो दो दिन पहले ही गाँव छोड़ कर चला गया है। नीलमणि को बड़ा आश्चर्य हुआ और दुख भी।

कुछ वर्ष व्यतीत हुए। नीलमणि अब वृद्ध हो चला था। वह एक दिन एक मकान के चबूतरे पर बैठा हुआ था कि एक रईस-सा दिखनेवाला आदमी घोड़ागाड़ी में आया और नीलमणि के सामने ही उतर पड़ा। उस आगन्तुक ने नीलमणि को खूब गहरी दृष्टि से देखते हुआ पूछा, "मैं इस गाँव में थोड़े दिन विश्राम करना चाहता हूँ। क्या यह मकान किराये पर मिल सकता है?"

नीलमणि चबूतरे पर से उतर कर नीचे आया और बोला, "महाशय, आप यह बात अन्दर जाकर मकान के मालिक से पूछ लीजिए!"

"अच्छी बात है! लेकिन अब तुम क्या कोई काम-धंधा नहीं करते हो?" आगन्तुक ने पूछा।

नीलमणि के चेहरे पर चिंता की रेखाएं गहरी हो गयीं। वह मायूस-सा होकर बोला, "नहीं, बाबूजी! मेरी सहनशीलता तो जवाब दे चुकी है। मेरे कामों में भूल-चूक हो जाती है। इसलिए अब कोई भी मुझे काम नहीं देना चाहता। पहला समय और था। इस गाँव में स्वास्थ्य-सुधार के लिए आनेवाले लोगों में कुछ धर्मात्मा भी होते थे। आजकल ऐसे लोग दिखाई नहीं देते। पहले जब प्रवासी लोग यहाँ से वापस जाया करते थे तो अपने स्मृति-चिन्ह के रूप में कुछ धन अथवा कोई मूल्यवान वस्तु भी दे जाते थे।"

"क्या ऐसे कुछ लोग भी तुम्हारे ध्यान में हैं, जो स्मृति के रूप में कुछ भी न देना चाहते हों या वादा करके मुकर जाते हों ?" उस आगन्तुक ने जिज्ञासा प्रकट की ।

नीलमणि किसी बात का स्मरण करता-सा कुछ क्षण चुप रहा, फिर बोला, "अपने स्मृति-चिन्ह के रूप में कुछ भी न देकर चले जानेवाले एक व्यक्ति का नाम मुझे अवश्य याद रह गया है, केशवचक्रवर्ती ।"

"उन्होंने ऐसा क्यों किया होगा भला ?" आगन्तुक ने पूछा ।

"यह बात मैं नहीं जानता, बाबूजी ! मैंने अपनी साठ वर्ष की आयु में ऐसी उदार प्रकृति का व्यक्ति दूसरा नहीं देखा । मैंने अपनी आदत के अनुसार उनके चले जाने की बात जानकर उनसे यादगारी के लिए कुछ देने की माँग की थी । इसके बाद मुझे किसी ज़रूरी काम से पास के गाँव में जाना पड़ा । मेरे लौटने के पहले ही वे चले गये । शायद उन्होंने मुझे लालची समझा होगा ।" नीलमणि ने कहा ।

आगन्तुक व्यक्ति ने स्नेहपूर्वक नीलमणि के कंधे थपथपाकर कहा, "नीलमणि, मैं केशव चक्रवर्ती ही हूँ । कई लोग स्मृति स्वरूप तुम्हें कई चीज़ें दे गये, पर उनमें से किसी का भी नाम तुम्हें याद नहीं है । मैंने तुम्हें कुछ नहीं दिया, फिर भी तुम्हें मेरी याद है । है न ?"

नीलमणि ने चकित होकर केशव चक्रवर्ती को नमस्कार किया ।

केशव चक्रवर्ती ने नीलमणि से कहा, "आज से पहले जब मैं यहाँ आया था । तब तुमने मेरी जो सेवा की थी, उसके लिए मैं तुम्हें कोई बहुत बड़ा पुरस्कार देना चाहता था । आज उसे देने का समय आगया है । इस बुढ़ापे में तुम्हारी देखभाल करनेवाला कोई नहीं है । तुम मेरे साथ मेरे घर चलो । जब तक तुम्हारी ज़िन्दगी है, मैं कुछ ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा कि तुम्हें किसी बात की चिन्ता न हो ।" यह कहकर केशवचक्रवर्ती ने घोड़ा गाड़ी की ओर पैर बढ़ाये ।

नीलमणि ने आश्चर्य एवं आनन्द के साथ केशव चक्रवर्ती का अनुसरण किया ।

आवश्यकता

राजनन्दन गाँव का निवासी कनकदास एक संपन्न व्यक्ति था। तीर्थनारायण का केलों का एक बगीचा था। वह कनकदास के घर अक्सर पहुँच जाता और उसे पाँच केले देकर एक रुपया ले जाया करता। तीर्थनारायण का बगीचा राजनन्दन गाँव से दस कोस की दूरी पर था।

एक बार कनकदास को किसी मांगलिक कार्य के लिए केलों की आवश्यकता पड़ी। कनकदास तीर्थनारायण के बगीचे में गया और उससे सौ केले ले लिये। तीर्थनारायण ने केलों की क़ीमत बीस रुपये माँगी।

कनकदास को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, "तीर्थनारायण, यह तो बड़ी विचित्र बात है। तुम खुद दस कोस चलकर आते थे, तब पाँच केलों की क़ीमत एक रुपया लेते थे। इस समय मैं दस कोस चलकर आया हूँ और पाँच नहीं सौ केले ख़रीद रहा हूँ। फिर भी तुम वही मूल्य माँग रहे हो ?"

तीर्थनारायण मुस्कराकर बोला, "सेठजी, यह तो आवश्यकता की बात है। जब मैं खुद आपके घर आकर फल बेचता था तो वह मेरी आवश्यकता थी। आज आप मेरे बगीचे में आकर फल ख़रीद रहे हैं, यह आपकी आवश्यकता है। इसलिए फलों के भाव में परिवर्तन कैसे हो सकता है ?"

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही लवणासुर आहार की खोज में मधुपुर की सीमा पार करके चला गया। शत्रुघ्न ने यमुना नदी पार की और मधुपुर के द्वार पर आ खड़े हुए। योजना यही थी कि जब लवण निहत्था हो, अर्थात् उसके हाथ में भगवान शिव का दिया त्रिशूल न हो, शत्रुघ्न तभी उसका वध करें। इसके बिना लवण का वध करना संभव नहीं है। उस त्रिशूल के साथ लवण अपराजेय है। देव, असुर, मानव कोई भी उसे जीतने में समर्थ नहीं हैं। यही कारण था कि बाहर गये लवण को शत्रुघ्न द्वार पर ही रोक कर युद्ध के लिए ललकारना चाहते थे, ताकि वह भवन से त्रिशूल लाने का अवसर प्राप्त न कर सके।

लवण ने जानवरों का शिकार किया और उन्हें ढोता हुआ दोपहर होने तक अपने नगर को लौट आया। जब उसने द्वार पर शत्रुघ्न को खड़े देखा तो वह विकट अट्टहास कर उठा और बोला, "अरे मानव ! क्या तुम आज मेरा आहार बनने के लिए आये हो ? आज तो तुमने मेरे लिए भोज का आयोजन कर दिया है।"

लवण की बात सुनकर शत्रुघ्न की आँखें लाल हो उठीं, भौंहें तन गयीं। उन्होंने गरजकर कहा, "अरे दुष्ट लवण, मैं तेरे साथ युद्ध करके तेरा संहार करने के लिए आया हूँ। मैं महाराज दशरथ का पुत्र और श्रीरामचंद्र का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम शत्रुघ्न है। आज मेरे हाथों से तुम्हारी मौत निश्चित है।"

शत्रुघ्न की बात पर लवण ठठाकर हँस पड़ा और बोला, "तुम्हारे भाई रामचंद्र ने मेरे मामा रावण का संहार किया, उस बात को मैंने टाल

दिया और तुम्हारे भाई को छोड़ दिया। मैंने अनेक महान व्यक्तियों का वध किया है। तुम तो मेरे लिए तिनके के समान हो। मुझे आज तक कोई पराजित नहीं कर सका। तुम मेरे साथ युद्ध करने आये हो? क्या तुम मेरे जीवन-चरित से परिचित नहीं हो? आज तक कोई भी देव, मानव मुझे हरा नहीं सका। यहाँ तक कि अनेक शूरवीरों ने बिना सामना किये ही मेरी पराधीनता स्वीकार की है। तुम अभी बालक हो। मेरी तपस्या की शक्ति और मेरे पराक्रम के बारे में क्या किसी ने तुम्हें नहीं बताया? और उस त्रिशूल केबारे मे जो मुझे अपने पिता से उत्तराधिकार में मिला है? क्या तुम भगवान रुद्र के त्रिशूल से टक्कर लेकर चूर होने का विचार कर आये हो? क्या तुम्हारे भाई राम ने तुम्हें नहीं समझाया? क्या वह भी मद में चूर होगया है? ठहरो, तुम्हारी लड़ाई की खुजली मैं अभी दूर किये देता हूँ। मुझे हथियार ले आने दो!"

"मेरे सामने आगये तुम्हें क्या मैं इतनी आसानी से जीवित छोड़ सकता हूँ? मैं इसी क्षण तुम्हारा वध करूँगा।" शत्रुघ्न ने कहा।

लवणासुर दाँत पीसने लगा। क्रोध से हाथ मलते हुए उसने पेड़ उखाड़ने शरू किये और उन्हें शत्रुघ्न पर फेंकने लगा। शत्रुघ्न ने अपने बाणों से उन पेड़ों को काट डाला, पर एक पेड़ शत्रुघ्न के सिर पर आ लगा और वे बेहोश होगये।

मंदमुद्धि लवण ने अचेत हुए शत्रुघ्न को मृत समझ लिया और अपने राजभवन से त्रिशूल लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उसने अपने शिकार किये हुए पशुओं को सिर पर रखा और चलने को हुआ। इस बीच शत्रुघ्न को चेत आगया और वे द्वार रोककर खड़े हो गये। उन्होंने श्रीराम से प्राप्त बाण को प्रत्यंचा पर चढ़ाया और लवण पर छोड़ दिया। वह आग उगलता हुआ गया और लवण के कलेजे में धंस गया। लवणासुर की मृत्यु होगयी। उसी क्षण लवणासुर के भवन में स्थित त्रिशूल भगवान शिव के पास चला गया।

इसके बाद शत्रुघ्न ने अपनी सेना को एकत्रित किया और मधुपुरं के राजा बनकर उसका शासन करने लगे। बारह वर्ष बीत गये। शत्रुघ्न के मन में अग्रज श्रीरामचंद्र के दर्शनों की इच्छा बलवती हो उठी। उन्होंने थोड़ी-सी सेना साथ ली और अपने

परिवार सहित अयोध्या के लिए चल पड़े। रास्ते में वाल्मीकि आश्रम आया। शत्रुघ्न वहाँ रात्रि व्यतीत करने के विचार से ठहर गये।

महर्षि वाल्मीकि ने शत्रुघ्न का समुचित सम्मान किया। उनका और उनकी सेना का आतिथ्य किया। भोजनोपरान्त वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण का पाठ हुआ। सुमधुर संगीत में इस पाठ को सुनकर शत्रुघ्न अत्यन्त आनन्दित हुए। वाल्मीकि की रचना अद्‌भुत थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो अतीत काल वर्तमान में प्रत्यक्ष हो उठा हो।

वह रात्रि रामकथा के श्रवण में बीत गयी। दूसरे दिन शत्रुघ्न ने महामुनि वाल्मीकि से विदा माँगी और अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। अयोध्या में श्रीराम का दर्शन करने के पश्चात् शत्रुघ्न ने निवेदन किया, "भैया, मैं आपके आदेशानुसार लवण राक्षस का वध करके मधुपुर का शासन कर रहा हूँ। बारह वर्ष बीत गये, मैं आपके दर्शनों से वंचित रहा। आपके दर्शनों की उत्कंठा से मैं आया हूँ।"

श्रीरामचंद्र ने शत्रुघ्न का आलिंगन करके कहा, "भाई, एक राजा के लिए उसका राज्य ही सर्वोपरि होता है। राज्य ही उसका धर्म, उसका कर्म, उसका परिवार है। राज्य के कल्याण के अलावा राजा के लिए अन्य कुछ विचारणीय नहीं होना चाहिए। राजधर्म में लोक-मंगल, लोक-कल्याण निहित है। वह सिर पर केवल मुकुट धारण करने के लिए नहीं है। राजा का कर्त्तव्य बड़ा कठिन, बड़ा विषम होता है। सब प्रकार के ऐश्वर्यों से घिरा दिखाई देने पर भी राजा,

सच देखा जाये, तो प्रजा का सेवक होता है। तुम एक सच्चे प्रजापालक राजा बन सको, यह मेरी अभिलाषा है। राज-कर्त्तव्य अन्य सब आचरणों से कठिन और महान है। तुम अपने राज्य और अपनी प्रजाओं के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन करो ! जब कभी तुम्हारे हृदय में मुझे देखने की अभिलाषा हो, तो यहाँ आया करो !" यह कहकर श्रीराम ने शत्रुघ्न को विदा किया।

भरत एवं लक्ष्मण शत्रुघ्न को सपरिवार कुछ दूर तक पहुँचाने गये, फिर उन्हें विदा कर वापस आगये।

इसके कुछ दिन बात की घटना है। एक ग्रामीण ब्राह्मण अपने पाँच वर्ष की आयु के पुत्र का शव उठाकर राजभवन के द्वार पर आया और रोने लगा। वह ब्राह्मण अपने इकलौते पुत्र की अकाल मृत्यु पर विलाप करते हुए राजा को दोषी ठहरा रहा था। राजा यदि धर्मपूर्वक शासन करे तो प्रजा में अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। इतने वर्षों बाद इक्ष्वाकु-वंशी राजाओं में से केवल राम के शासन में ही देश की यह दुर्दशा हुई कि अकाल मृत्यु हुई है।

महाराजा रामचंद्र यह समाचार सुनकर बहुत दुखी हुए। उन्होंने गुरुदेव वशिष्ठ तथा अन्य मंत्रिगण एवं ब्राह्मणों को बुलाकर एक ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु का समाचार सुनाया। ब्राह्मण बालक की अकाल मृत्यु का कारण बताते हुए देवर्षि नारद ने कहा, "महाराज, शम्बूक नाम का एक शूद्र भारी तपस्या कर रहा है। यह युगधर्म के विपरीत है। इसीलिए इस बालक की मृत्यु होगयी है।"

नारद के शब्द सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण को आदेश दिया, "लक्ष्मण, तुम जाओ और उस ब्राह्मण को सांत्वना दो तथा उस बालक की देह को तैल-भाण्ड में सुरक्षित रखवा दो !"

लक्ष्मण को यह आज्ञा देने के बाद रामचंद्र वीर-वेश से सज्जित हुए और पुष्पक विमान पर आरूढ़ होकर उस शूद्र मुनि की खोज में दिशाओं की परिक्रमा करने लगे। उन्होंने उत्तर, पूर्व तथा पश्चिमी दिशाओं को छान डाला, तब दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उन्होंने देखा कि एक सरोवर में एक मनुष्य औंधे मुँह तपस्या कर रहा है। श्रीराम ने अपना विमान रोक दिया और

विमान से उतरकर उस व्यक्ति के निकट पहुँचकर बोले, "मैं महाराज दशरथ का पुत्र राम हूँ। आपकी इस कठोर तपस्या का कारण जानना चाहता हूँ और यह भी जानना चाहता हूँ कि आप किस वर्ण-जाति को शोभायमान कर रहे हैं?"

औंधे मुँह तप करनेवाले उस तपस्वी ने कहा, "महाराज राम, मैं शूद्र हूँ। मेरा नाम शम्बूक है। मैं शरीर के साथ स्वर्ग-गमन की कामना से यह तप कर रहा हूँ।"

शम्बूक अभी कुछ और कहना चाहता था कि रामचंद्र ने अपनी तलवार से शम्बूक का सिर काट दिया।

उसी क्षण देवताओं ने श्रीराम पर पुष्प वृष्टि की। आकाश तुरही-स्वरों से गूंज उठा। देवगण बोले, "श्रीराम, आपने इस शूद्र का वध कर इसे स्वर्ग-गमन से रोक दिया। बस, यही हम चाहते थे। आपकी कोई कामना हो तो निवेदन करें!"

"अकाल मृत्यु को प्राप्त उस ब्राह्मण बालक को जीवित कर दीजिये!" रामचंद्र ने कहा।

"शम्बूक की मृत्यु के साथ ही वह ब्राह्मण बालक जीवित हो उठा है।" यह कहकर देवगण वहाँ से चले गये।

इसके बाद श्रीरामचंद्र वहाँ के समीपवर्ती अगस्त्य-आश्रम में गये और मुनि द्वारा अर्पित आतिथ्य को स्वीकार किया। महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम को एक आभूषण प्रदान किया। राम ने उसे स्वीकार करके पूछा, "ऋषिवर, यह तो कोई दिव्य आभूषण प्रतीत होता है। आपको किसने यह आभूषण प्रदान किया है?"

इस प्रश्न के उत्तर में अगस्त्य ने श्रीराम को श्वेत की कहानी सुनायीः

प्राचीन काल में एक सहस्त्र क्षेत्रफल का एक वन था। उसके मध्य भाग में एक योजन वर्गाकार एक सरोवर था। उस अरण्य में एक भी पक्षी अथवा पशु का आवास नहीं था। सरोवर के निकट ही एक आश्रम था। एक बार अगस्त्य उस आश्रम में गये। एक रात वहाँ बितायी और प्रातः काल के समय सरोवर के पास पहुँचे। उस सरोवर के किनारे उन्हें एक पुष्ट शव दिखाई दिया। वह ज्यों का त्यों सुरक्षित था। अगस्त्य सोचने लगे कि यह कैसा अद्भुत शव है! उसी समय वहाँ आकाश से एक विमान आया। वह

एक दिव्य विमान था। उसमें एक दिव्य पुरुष विराजमान था और अनेक अप्सराएँ उसकी परिचर्या में लगी हुई थीं। उनमें से कुछ अप्सराएँ गा रही थीं, कुछ वाद्ययंत्र बजा रही थीं और कुछ नाच रही थीं।

कुछ देर बाद वह दिव्य पुरुष विमान से उतरा। उसने सरोवर के तट पर स्थित शव को खा लिया। इसके पश्चात सरोवर के जल में हाथ-मुँह धोकर वह पुनः विमान पर आरूढ़ होने लगा। तब अगस्त्य ने उससे पूछा, "महानुभाव, आप कौन हैं? आपने ऐसा तुच्छ आहार ग्रहण किया, इसका कारण क्या है? कोई हीन व्यक्ति भी ऐसा हीन आहार ग्रहण नहीं करेगा।"

अगस्त्य के प्रश्न के उत्तर में उस दिव्य पुरुष ने अपनी पूर्व कथा सुनायी :

मैं विदर्भ राजा सुदेव का पुत्र था। मेरा नाम श्वेत था। मेरे पिता महाराजा सुदेव के दो पत्नियां थीं। दोनों से ही उन्हें एक-एक पुत्र प्राप्त हुआ। बड़ा पुत्र मैं था। छोटे का नाम सुरथ था। अपने पिता के उपरांत मैंने बहुत काल तक राज्य किया, फिर सुरथ का राज्याभिषेक करके मैं तपस्या करने चला गया। दीर्घ तप करने के बाद मैंने अपनी देह त्याग दी और ब्रह्मलोक में पहुँचा। ब्रह्मलोक प्राप्त करने के बाद भी मैं भूख-प्यास का अनुभव करता। भूख-प्यास के कारण मैं घबरा गया और ब्रह्मा के पास जाकर पूछा, "ब्रह्मदेव, ब्रह्मलोक में आने पर भी भूख-प्यास ने मुझे नहीं छोड़ा। इसका क्या कारण है? मैंने कोई भूल तो नहीं की?"

ब्रह्मा ने कहा, "जिस अरण्य में तुम रहते थे, वहाँ पशु-पक्षी न थे। तुम्हें कभी भी संतुष्टिपूर्वक भोजन प्राप्त नहीं हुआ। इसके अलावा, तुम सदा तपस्या में लीन रहते थे, इस कारण तुमने कभी अतिथियों को भोजन का दान नहीं दिया। यही कारण है कि भूख-प्यास तुम्हारे साथ लगी हुई है। तुम अरण्य में स्थित अपने शव को खाकर अपनी भूख का शमन करते रहो। यह क्रम कुछ काल चलेगा और तुम्हें नित्य अपना शव उतना ही पुष्ट मिलेगा। कुछ समय बाद वहाँ महर्षि अगस्त्य आयेंगे और अपनी अपार महिमा की शक्ति से सदा के लिए तुम्हारी भूख-प्यास शांत कर देंगे।"

दिव्य पुरुष समझ गया कि प्रश्नकर्ता और कोई नहीं महर्षि अगस्त्य ही हैं। उसने कहा, "मुनिवर, आप मुझ पर अनुग्रह कर मेरे कष्ट को दूर कर दीजिए। प्रत्युपकार-स्वरूप यह दिव्य आभूषण ग्रहण कीजिए! यह प्रतिदिन आपको वस्त्र, आहार और आभूषण प्रदान करता रहेगा।"

अगस्तुय ने ज्यों ही वह आभूषण ग्रहण किया, त्यों ही श्वेत का शव शिथिल होगया। दिव्य पुरुष प्रसन्न होकर ब्रह्मलोक में चला गया।

यह कहानी सुनकर श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से पूछा, "मुनिवर, श्वेत ने जिस वन में तपस्या की थी, उसमें पशु-पक्षी क्यों नहीं थे?"

अगस्त्य ने कहना आरंभ किया:

कृतयुग में चक्रवर्ती मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु का राज्याभिषेक किया। इक्ष्वाकु को राजनीति का उपदेश कर वे स्वयं ब्रह्मलोक में चले गये। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए। उनमें अंतिम पुत्र का नाम दण्ड था। वह मूर्ख था। इक्ष्वाकु ने दण्ड को विंद्य तथा शैवल प्रदेशों का राज्य दिया। दण्ड ने वहाँ मधुमंत नाम के सुंदर नगर का निर्माण कराया। इसके बाद वह शुक्राचार्य को अपना गुरु मानकर राज्य करने लगा।

शुक्राचार्य के अरज नाम की एक सुंदर कन्या थी। एक दिन दण्ड वन में विहार कर रहा था। वन में अरज को अकेली पाकर दण्ड का चित्त चंचल हो उठा। अरज ने दण्ड को समझाया कि वह शुक्राचार्य की पुत्री है। अनुचित कामना करने पर गुरु शुक्राचार्य राजा दण्ड को शाप दे देंगे। फिर भी, मंदमति दण्ड ने अरज के हित वचनों पर ध्यान न देकर उसका अपमान किया।

जब शुक्राचार्य को उसके दुष्ट व्यवहार कका ज्ञान हुआ तो उन्होंने शाप दिया, "मधुमंत नगर के सौ योजन की दूरी तक सात दिन निरन्तर धूलि-वर्षा होगी और सब कुछ नष्ट हो जायेगा।"

शुक्राचार्य के शाप के कारण उस क्षेत्र में एक सप्ताह तक धूलि की वर्षा हुई और वह प्रदेश सर्वनाश को प्राप्त हुआ।

अगस्त्य मुनि के साथ सत्संग में श्रीराम ने थोड़ा समय उस आश्रम में बिताया, फिर उनसे विदा लेकर अयोध्या को लौट गये।

युक्ति की शक्ति

प्राचीन काल की बात है, कश्मीर पर महाराजा अवंती वर्मा का शासन था। उन दिनों प्रकृति का प्रकोप बहुत अधिक था। हर वर्ष अकाल पड़ता था। जनता अन्न के अभाव में तड़पा करती थी।

कश्मीर ऊँचे पहाड़ों के बीच फैला हुआ है। वहाँ की नदियां पहाड़ों से नीचे की ओर तेज़ी से बहती हैं। अक्सर उन नदियों में बाढ़ आजाती है। वहाँ की ज़मीन अत्यधिक उपाजाऊ है। महापद्म सरोवर के जल से कई हज़ार एकड़ ज़मीन में सिंचाई होती और उस ज़मीन में स्वर्णिम फ़सलें हुआ करतीं। लेकिन जनता उस फ़सल का उपयोग करे, इससे पहले ही उस प्रदेश की वितस्ता नदी में बाढ़ आजाती और नदी की बाढ़ महापद्म सरोवर में बह जाती। सरोवर में उफान आजाता और फ़सलें नष्ट हो जातीं।

अवन्तीवर्मा अत्यन्त धर्मात्मा राजा थे। उन्होंने सोचा कि अवश्य ही उनसे कोई भूल होगयी है, जिसके परिणाम स्वरूप उनकी प्रजा अकाल का ग्रास बनती जा रही है। इस विचार से उन्होंने अनेक देवी-देवताओं का पूजा-अर्चन करवाया। ग्रहों के उपशमन के लिए कर्मकांड करवाये। यज्ञ-याग करवाये। इन सबके बावजूद बाढ़ का क्रम ज़ारी रहा।

कुछ वर्ष इस संकट में बीत गये। तभी राजा के कानों में यह समाचार पड़ा कि सुय्या नाम का कोई आदमी सब जगह यह कहता फिर रहा है कि वह बाढ़ को रोक सकता है। लोग उसे पागल समझकर उसे और अधिक उकसा रहे हैं और उसकी डींग हाँकने की प्रवृत्ति का आनन्द लूट रहे हैं। राजा को यह समाचार विचित्र-सा प्रतीत हुआ

राजा अवन्तीवर्मा किसी भी छोटे-बड़े उपाय से प्रति वर्ष पड़नेवाले अकाल को दूर करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सुय्या को नज़रन्दाज़

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित कहानी

नहीं किया और उसे अपने महल में बुलवा भेजा। सुय्या राजा के सामने आया और उन्हें प्रणाम करके खड़ा रह गया।

"क्या यह सच है कि तुम सब जगह बाढ़ रोकने की बात करते घूम रहे हो ?" राजा ने पूछा।

"जी हाँ, महाराज ! बाढ़ रुक जाये तो अकाल भी दूर हो जायेगा।" सुय्या ने बड़े इतमीनान से कहा।

"बाढ़ कैसे रुकेगी ? क्या तुम बाढ़ को रोक सकते हो ?" राजा अवन्तीवर्मा ने पूछा।

"जी हाँ, महाराज ! मैं बाढ़ को रोक सकता हूँ।" सुय्या ने कहा।

"जो काम हम अपनी राजकीय शक्ति से नहीं कर पारहे हैं, वह काम तुम अकेले कैसे कर सकते हो ?" राजा ने पूछा।

"आप धन दीजिए, महाराज ! इस दुनिया में ऐसा कौन सा काम है जो धन के द्वारा संभव नहीं है !" सुय्या ने कहा।

"तुम हमारे ख़ज़ाने का सारा धन ले जाओ, पर याद रखना, अगले वर्ष बाढ़ नहीं आनी चाहिए।" राजा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

मंत्री ने राजा को रोकने का प्रयत्न किया, पर राजा ने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

सुय्या इतनी स्वर्ण मुद्राएं गठरी बांधकर ले गया, जितनी वह स्वयं ले जा सकता था। जनता उसके पीछे उसका मज़ाक उड़ाते हुए चलने लगी। कोई भी सुय्या की बात को गंभीरता से नहीं ले रहा था। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि सुय्या ने राजा को दग़ा देकर धन हड़प लिया है। कुछ और लोगों ने कानाफूसी की कि सुय्या के साथ राजा भी पागल होगये हैं। पर सबके मन में यह विचार था कि देखें, सुय्या यह धन ले जाकर क्या करता है ?

कश्मीर में प्रति वर्ष बाढ़ लानेवाली वितस्ता नदी कुछ दूर बहने के बाद पहाड़ी घाटियों के बीच से होकर आगे बढ़ती है। सैंकड़ों वर्षों के दौरान पहाड़ों के दोनों ओर से भारी पत्थर नीचे गिरते थे और पुल की तरह आड़े पड़े हुए थे। बाढ़ के दिनों के अलावा लोग उन्हीं पत्थरों के ऊपर से नदी पार किया करते थे। उन्हीं पत्थरों की रोक के कारण बाढ़ आकर सरोवर में उफान आजाता था और फ़सलें बरबाद हो जाती थीं।

सच देखा जाये तो सुय्या को बाढ़ का असली कारण पकड़ में आगया था ।

सुय्या धन की गठरी लेकर इसी इलाक़े में आया । उसके पीछे-पीछे हज़ारों लोग चले आरहे थे । सुय्या नदी में आड़े पड़े पत्थरों के पास जाकर रुका और गठरी से स्वर्ण मुद्राएं निकाल कर पत्थरों के बीच गिराता हुआ आगे बढ़ने लगा । सुय्या ख़ज़ाने के धन को नदी में फेंकता जा रहा था ।

जनता में हाहाकार मच गया । अब तो पूरी तरह यह प्रमाणित होगया कि सुय्या पागल है । सोने की मुद्राओं को नदी में इस तरह फेंकनेवाला आदमी पागल ही कहा जायेगा । उसे इस काम से रोकना किसी के लिए संभव नहीं हुआ ।

अचानक लोगों में एक चेतना जागृत हुई । कुछ लोग पानी में उतर पड़े और स्वर्ण मुद्राओं की खोज करने लगे । कुछ लोग दलों में बंट गये और समूह बाँधकर बड़ी-बड़ी चट्टानों को किनारे पर खींच लाकर उनके नीचे गिरी स्वर्ण मुद्राओं को चुनने लगे ।

बहुत ही जल्दी यह समाचार आस-पास के गाँवों में फैल गया । और भी हज़ारों लोग चले आये और सैंकड़ों वर्षों से नदी में आड़े पड़ी चट्टानों को नदी के किनारे पहुँचाने लगे । जो काम राजसेवक नहीं कर सकते थे वह जनता कर रही थी । उनके प्रयत्नों को प्रोत्साहन देने के लिए सुय्या ख़ज़ाने से और अधिक स्वर्ण मुद्राएं लाकर उन चट्टानों के नीचे डालने लगा, जो अभी पानी के बीच में ही पड़ी हुई थीं ।

शाम तक पत्थरों का वह पुल लगभग ग़ायब होगया । पानी किसी प्रकार की रुकावट न पाकर स्वाभाविक गति से बहने लगा । जिन लोगों ने श्रम उठाकर काम किया था, स्वर्ण मुद्राएं उनके हाथ लगीं ।

उस वर्ष के बाद वितस्ता में बाढ आनी बंद होगयी । कश्मीर की जनता खुशहाली से अपना जीवन व्यतीत करने लगी ।

सुय्या की युक्ति की शक्ति ने अपना चमत्कार दिखाया । देश के प्रति किये गये उसके उपकार की सब प्रशंसा करने लगे । राजा अवन्तीवर्मा ने अपार धन देकर उसका सम्मान किया ।

अभिशाप

उज्जयिनी में उस समय राजा कीर्तिवर्मा का राज्य था। राज्य का दरबारी कवि जयदेव असाधारण मेधावी और शास्त्रों का ज्ञाता था। उसने सौ से भी अधिक काव्यों की रचना की थी और राज्य तथा राज्य से बाहर भी अपार यश अर्जित किया था। जयदेव का पुत्र सोमनाथ भी कवि एवं पंडित था। उसने कुछ काव्य भी रचे थे, पर उन काव्यों को विशेष यश न मिल सका।

एक दिन सोमनाथ राजा कीर्तिवर्मा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने प्रणाम कर निवेदन किया, "महाराज, आपकी आज्ञा हो तो मैं पड़ोसी राज्य मांडवगढ़ में जाकर रहा चाहता हूं।"

राजा ने विस्मित होकर पूछा, "क्या तुम्हारे पिता तुमसे रुष्ट हैं ?"

"महाराज, ऐसा कहने पर तो मैं अपनी दृष्टि में ही गिर जाऊंगा।" सोमनाथ ने सिर झुकाकर कहा।

"क्या मेरे राज्य में तुम्हें सुख-सुविधा प्राप्त नहीं है ?" राजा कीर्तिवर्मा ने पुनः प्रश्न किया।

"महाराज, पराये राज्य में मुझे यहाँ से अधिक क्या सुख-भोग मिल सकते हैं ?" सोमनाथ ने कहा।

"फिर तुम पड़ोसी राज्य में जाकर बसना क्यों चाहते हो ?" राजा ने पूछा।

सोमनाथ इस प्रश्न का कोई उत्तर देना चाहता था कि अचानक उसने मौन धारण कर सिर झुका लिया। मंत्री प्रद्योतसेन ने कवि-पुत्र के अन्तर को समझ लिया और राजा से निवेदन किया, "महाराज, आप सोमनाथ को अनुमति दे दीजिए।"

सोमनाथ आज्ञा पाकर वहां से चला गया। इसके बाद राजा कीर्तिवर्मा ने प्रद्योतसेन से प्रश्न किया, "मंत्रीवर, आपने सोमनाथ को जाने देने की सलाह क्यों दी ?"

"महाराज, इतने महान, असाधारण प्रतिभाशाली और यशस्वी पिता का पुत्र होना सचमुच ही सोमनाथ के लिए एक अभिशाप है। वह अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन यहाँ कभी नहीं कर सकता था।" मंत्री ने कहा।

मांडवगढ़ में पहुँच कर सोमनाथ ने अनेक काव्यों की रचना की और पर्याप्त यश अर्जित किया।

[६]

जय-विजय किसी भी प्रकार से परदेशी राजदीप का अन्त करने की योजना बनाने लगे। दोनों दुष्ट तो थे ही, अब उन दोनों की दुष्टता राजदीप को अपना निशाना बनाने लगी। राजदीप का भोजन दोनों चौधरियों के घर से ही आता था। राजदीप को कष्ट देने के लिए एक दिन जय-विजय ने उस खाने में बहुत अधिक मिर्च का चूरा मिला दिया। राजदीप ने भोजन खा लिया। उसे तो कोई तक़लीफ़ न हुई, बल्कि उन दोनों का भोजन तीखा होगया और उनकी जुबान में छाले पड़ गये।

इस घटना के बाद भी जय-विजय की बुद्धि ठिकाने नहीं लगी। कुछ दिनों बाद उन दुष्टों ने राजदीप के खाने में ज़हर मिला दिया। राजदीप की तब भी कोई हानि नहीं हुई, पर जय-विजय उस समय का भोजन करते ही उल्टियाँ कर बेहोश होगये। कारण किसी की समझ में नहीं आरहा था।

दोनों मुखियों रामधन और श्यामधन ने अपने बेटों की जाँच की, पर उन्हें उनकी नाड़ी नहीं मिल सकी। अब तो दोनों घबरा गये और दौड़कर राजदीप के पास पहुँचे। वे राजदीप की शक्ति को भलीभांति स्वीकार का चुके थे, पर मुँह से नहीं कुबूल करना चाहते थे।

राजदीप ने सारा वृत्तान्त सुना, फिर कहा, "अवश्य ही जय-विजय ने मेरे भोजन में ज़हर मिलाया होगा। मुझ पर तो उसका कोई प्रभाव होना ही नहीं था, बल्कि उन्हीं का जीवन ख़तरे में पड़ गया। इस बार मैं किसी तरह उन्हें बचाये देता हूँ, पर आगे अगर कभी ऐसा हुआ तो मैं भी

उन्हें बचा नहीं पाँऊगा ।" यह कहकर राजदीप मुखियों के घर आया और उनके पिछवाड़े से कुछ पत्ते तोड़कर उनका रस निकाला और जय-विजय के मुँह में डाल दिया ।

रस की बूँदें मुँह में जाते ही दोनों उठ बैठे । दोनों मुखियों ने अपने बेटों को सारी वास्तविक बात सुनाकर उन्हें चेतावनी दी, "तुम दोनों अगर परदेशी राजदीप के खिलाफ़ कुछ भी करोगे, तो तुम पर उलट कर गिरेगा । हम तुम्हें इससे पहले भी समझा चुके हैं कि अब तुम अपना स्वभाव बदल दो । आज भी हम तुम्हें समझाते हैं, आज से राजदीप को मत छेड़ना ।"

जय-विजय राजदीप के पैरों पर गिर पड़े, बोले, "आप सचमुच ही बहुत बड़े मांत्रिक हैं । वास्तव में हम आपको कोई नुक़सान नहीं पहुँचाना चाहते, पर हमारी मति मारी गयी है । आप ही कोई ऐसा उपाय बताओ कि हम अच्छी राह पर चल सकें ।"

राजदीप कुछ देर तक सोचता रहा, फिर बोला, "तुम लोगों को सच्ची राह पर लाना मेरा कर्त्तव्य है । जो तुम चाहोगे तो जल्दी ही सन्मार्ग पर आजाओगे ।" यह कहकर राजदीप ने विजय का कंधा पकड़कर कहा, "कल तुम जय को यहीं छोड़कर कुछ गाँव वालों के साथ जंगल में जाना । वहाँ तुम अपनी पसन्द का एक पेड़ चुनकर उसकी तीन बार परिक्रमा करना । फिर श्री महाविष्णु का नाम आँखें बन्द करके जपना । कुछ क्षण बाद तुम लोगों के सामने एक देवी प्रत्यक्ष होगी । तुम उस देवी से कहना कि जय ने तुम्हें यहाँ भेजा है । वह तुम लोगों के साथ इस गाँव में आजायेगी । वह देवी तुम दोनों के दिल बदल सकती है ।"

दूसरे दिन विजय कुछ ग्रामवासियों के साथ समीप के वन में पहुँचा । वहाँ उसने एक़ वृक्ष चुनकर उसकी प्रदक्षिणा की । तब आँखें मूंदकर श्रीमहाविष्णु का जप आरंभ किया ।

कुछ देर बाद वहाँ एक गंभीर ध्वनि हुई। ग्रामवासी बड़ी ज़ोर से चिल्ला उठे—"देवी प्रत्यक्ष होगयी ! देवी प्रत्यक्ष होगयी !"

विजय ने आँखें खोलीं और विस्मित होकर गाँववालों से पूछा, "बताओ, क्या हुआ ?"

गाँववालों ने पेड़ के निकट बेहोश पड़ी

प्रियंवदा को दिखाकर कहा, "न मालूम यह देवी कहाँ से आगयी ? हमें तो लगता है, यही वह देवी है, जिसके बारे में परदेशी ने बताया था। अब अगर हम इसे गाँव ले जासकें तो अवश्य ही हमारा उद्धार हो जायेगा ।"

विजय ने प्रियंवदा के पास जाकर उसकी जाँच की। वह समझ गया कि देवी अचेत अवस्था में है। उसने ग्रामवासियों से पानी लाने को कहा। पानी आने पर उसने देवी के मुख पर जल के छींटे दिये ।

प्रियंवदा ने आँखें खोलकर पूछा, "मैं कहाँ हूँ ?"

विजय ने कहा, "हम यहाँ पास के ही एक गाँव शतनन्दन के निवासी हैं। जय के भेजने पर यहाँ आये हैं। क्या तुम हमारे साथ गाँव में चलोगी ? वहाँ हम तुम्हारे लिए सारी व्यवस्था कर दे ।"

जय का नाम सुनकर प्रियंवदा ने उसे अन्तःपुर के उद्यान का प्रहरी जय ही समझा। इसलिए उसने स्वीकृति में अपना सिर हिलाकर कहा, "मुझे बड़ी भूख लगी है ।"

"तुम जो कुछ चाहोगी, सब देंगे। हमारे साथ गाँव में चलो !" विजय ने कहा ।

ग्रामवासी प्रियंवदा को देवी समझकर भ्रमित होगये। वे दौड़कर उसके लिए एक पालकी ले आये। प्रियंवदा को पालकी में बैठाकर सब लोग शतनंदन गाँव में पहुँचे। इसके बाद सबने देवी बनी प्रियंवदा को परदेशी राजदीप के घर छोड़ दिया। प्रियंवदा टीले पर बनी राजदीप की कुटिया में आगयी ।
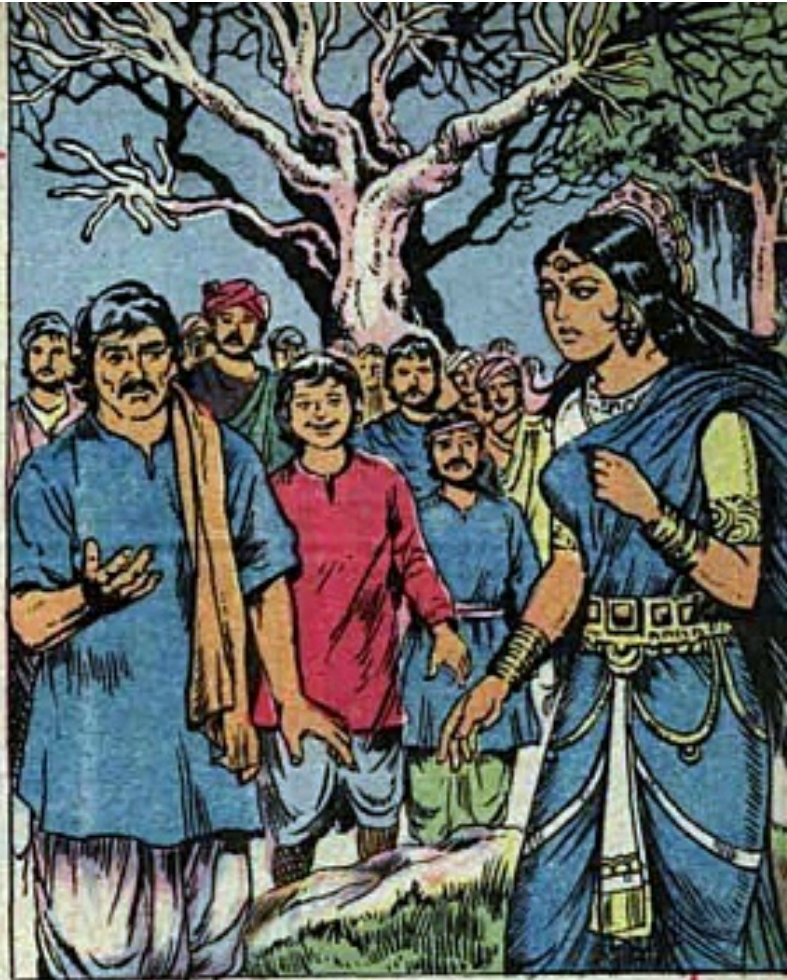
ग्रावासियों ने जब सुना कि राजदीप के कथनानुसार देवी प्रत्यक्ष होगयी है, तो गाँव की सारी जनता उस देवी के दर्शन के लिए उमड़ पड़ी। प्रियंवदा के सौन्दर्य को देखकर सबकी आँखें फटी रह गयीं। सब सोचने लगे कि यह परदेशी न केवल रोग-शोक दूर करता है—बल्कि इसका जादू देवी-देवताओं पर भी चलता है

ग्रामवासियों के वहाँ से चले जाने पर राजदीप ने प्रियंवदा से पूछा, "तुम कौन हो ? अचानक कैसे प्रत्यक्ष होगयी हो ?"

प्रियंवदा ने राजदीप के चेहरे पर अलौकिक तेज देखा। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस

साधारण से ग्राम में यह दिव्य पुरुष कहाँ से आगया ? उसने अपनी कहानी सच-सच कह सुनायी, फिर कहा, "महानुभाव, आप आयु में अभी युवक ही हैं । पर आपके चेहरे पर तत्वज्ञानियों का-सा तेज है। इसीलिए मैंने बिना कुछ छिपाये आपको सब बता दिया है ।"

प्रियंवदा की बातें सुनकर राजदीप ने अपने बारे में बताया और कहा, "यह सब बड़ा विचित्र प्रतीत होता है। तुम एक जय की खोज में निकल कर दूसरे जय के गाँव में पहुँच गयीं । मैं नहीं जानता, किस शक्ति ने मेरे मुख से यह नाम उच्चारित करवाया था ! सचमुच तुम देवी बनकर यहाँ आयी हो । अब देवी बनकर ही यहाँ कुछ काल के लिए निवास करो। तुम्हीं बताओ, अब क्या करना होगा ?"

राजदीप की बातें सुनकर प्रियंवदा के मुख पर लालिमा छागयी । वह बोली, "तुम्हें देखकर मेरे मन में अपार हर्ष हिलोरे मार रहा है । सदा तुम्हारे साथ रहने को हृदय मचल रहा है । राजदीप, इस समय मेरे मन में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई कामना नहीं है । क्या यह संभव है कि मैं सदा तुम्हारे साथ रह सकूँ ।"

प्रियंवदा की बात सुनकर राजदीप घबरा उठा, बोला, "प्रियंवदा, मुझे लगता है कि तुम जय-विजय को अच्छे मार्ग पर ला सकती हो । तुम पहले यह काम करो ! मेरा कर्त्तव्य यही है ।"

"तुम जो कहोगे, वही करूँगी ।" प्रियंवदा ने कहा ।

राजदीप ने प्रियंवदा को खाना खिलाया। इसके बाद प्रियंवदा गहरी नींद सो गयी।

जय-विजय दोनों ही प्रियंवदा के सौन्दर्य पर मुग्ध थे। वे उस दिन से उसी के पास बने रहते और अन्य सब बातें भूल गये ।

एक दिन जय प्रियंवदा से बोला, "तुम कितनी सुन्दर हो, यदि तुम सदा के लिए हमारे साथ रहो तो कितना अच्छा होगा !"

"यह कैसे संभव है ? थोड़े दिन बाद तो मेरी शादी हो जायेगी न !" प्रियंवदा ने कहा।

"शादी होगी तो क्या साथ न रह सकोगी ?" विजय ने भोलेपन से पूछा।

"शादी के बाद मैं अपने पति के पास रहूँगी। यहाँ रहना संभव नहीं।" प्रियंवदा ने उत्तर दिया।

जय कुछ देर सोचता रहा, फिर बोला, "तुम मेरे साथ शादी कर लो न? तुम्हें स्वीकार है न?"

"इसके लिए विजय क्यों राज़ी होने लगा?" प्रियंवदा ने कहा।

"मैं नहीं मानूँगा। मैं ही तुम्हारे साथ शादी करूँगा।" विजय ने हठ दिखाते हुए कहा।

जय ने विजय को क्रुद्ध दृष्टि से ताका, फिर दोनों वाद-विवाद करने लगे।

प्रियंवदा ने उन्हें समझाते हुए कहा, "मैं तुम दोनों में से किसी एक के साथ ही शादी कर सकती हूँ। इसके लिए एक ही उपाय है। इस गाँव में आया यह परदेशी राजदीप अत्यन्त ख़तरनाक है। तुम दोनों में से जो उस परदेशी को पराजित करेगा, मैं उसी के साथ शादी करूँगी।"

"वह परदेशी तो जादूगर है। बहुत बड़ा मांत्रिक है। उसे पराजित करना हम दोनों के लिए ही असंभव है। तुम कोई और शर्त रखो तो शायद हम पूरी कर सकें।" जय-विजय एक साथ बोले।

"यदि तुम्हारे मन में मेरे साथ शादी करने की सच्ची कामना है तो कोई भी कार्य कठिन नहीं है। तुम दोनों मेहनत तो करो, फिर जो राजदीप को हरायेगा, मैं उसी के गले में वरमाला पहना दूँगी। क्या मुझे पाने के लिए तुम इतना भी नहीं कर सकते?" प्रियवंदा ने कहा।

जय ने प्रियंवदा की तरफ़ शंकित दृष्टि डालकर कहा, "लेकिन तुम उस परदेशी को हराना क्यों चाहती हो? क्या शादी करने के लिए यह ज़रूरी शर्त है?"

"हाँ, शर्त है! वह परदेशी हमारे लिए बगल में छुरी के समान है। यदि मैंने किसी और से शादी करली, मतलब तुममें से ही किसी से—और वह परदेशी मुझे जबर्दस्ती उठाकर ले गया तो तुम क्या करोगे? इसलिए पहले परदेशी को हरा दिया जाये, ताकि वह बाद में बाधा न डाले।" प्रियंवदा ने साफ़ कह दिया।

"तुम्हारा कहना सच है। कल ही हम उस परदेशी राजदीप को अपनी शक्ति से परिचित करा देंगे। युद्ध करके उसे पछाड़ेंगे।" जय-विजय एक स्वर में बोले।

ठाकुर का सिर

बुन्देलखंड में किसी पुराने राजवंश का एक ठाकुर रहता था । उसका नाम था जसपालसिंह । जसपालसिंह के पास अब दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी पर्याप्त धन नहीं था, पर फिर भी वह दिखावटी ठाठ बाट में कमी नहीं करता था । जसपालसिंह, सदा अपने वंश के बड़प्पन का बख़ान करते हुए वह अपना और सबका समय बरबाद किया करता था ।

एंक दिन ठाकुर रास्ते पर खड़ा होकर सेठ पीताम्बर से बात कर रहा था । उस समय दूर पर उसे एक बैलगाड़ी आती दिखाई दी । उस गाड़ी पर धान के बोरे ऊँचाई तक लदे हुए थे ।

उस गाड़ी को देखकर ठाकुर जसपालसिंह चिल्ला उठा, "वाह, कितना बड़ा हाथी है ! मेरे दादा के पास भी एक ऐसा ही हाथी था ।"

"ठाकुर साहब, आपको भ्रम होगया है । वह हाथी नहीं है, धान के बोरों से लदी हुई बैलगाड़ी है ।" सेठ पीताम्बर ने कहा ।

"ऐसा लगता है कि भ्रम मुझे नहीं, तुम्हें होगया है । साफ़ दिख रहा है कि वह हाथी है और हमारी तरफ़ बढ़ा चला आ रहा है ।" ठाकुर जसपाल सिंह ने कहा ।

"ठाकुर साहब ! वह धान के बोरों से लदी बैल गाड़ी है ।" सेठ पीताम्बर ने खीजकर कहा ।

"अगर वह हाथी हुआ तो मेरी जीत होगी और मैं तुम्हारा सिर काट डालूँगा और अगर बैलगाड़ी हुई तो जीत तुम्हारी होगी, तुम मेरा सिर काट डालना । बस यही हमारी शर्त है ।" यह कहकर मूंछों पर ताव देता हुआ ठाकुर जसपालसिंस बड़ी अकड़ से खड़ा रहा । थोड़ी ही देर में बैलगाड़ी उनके सामने पहुँच गयी ।

"ठाकुर साहब, देख रहे हैं न, यह हाथी नहीं, बैलगाड़ी है । आप शर्त हार गये हैं ।" पीताम्बर ने मुस्कराकर कहा ।

बुन्देलखंड की लोक कथा

"हाँ, पीताम्बर ! बात तो सच है। अब तुम मेरा सिर काट डालो !" ठाकुर ने कहा।

"जाने दीजिए ! कौन-सी बड़ी भारी बाजी थी ?" पीताम्बर बोला।

"ऐसा नहीं हो सकता। हमारी शर्त के अनुसार तुम्हें मेरा सिर काटना ही पड़ेगा। हम राजवंशी ठाकुर हैं। अपने वचन से नहीं मुकर सकते।" ठाकुर जसपालसिंह अड़ गया।

सेठ पीताम्बर बड़ी मुश्किल में फँस गया। उसने कहा, "चलिये, हम लोग न्यायाधीश जगत मोहन के यहाँ चलते हैं। उनसे परामर्श लेकर जैसा वे कहेंगे, हम करेंगे।"

जसपालसिंह ने पीताम्बर की बात मान ली।

इसके बाद वे दोनों न्यायाधीश जगत मोहन के पास पहुँचे। न्यायाधीश ने सारा वृत्तान्त सुनकर धनवान की दुरवस्था समझ ली। उसने अपना फैसला सुनाते हुए कहा, "यह बात सच है कि ठाकुर साहब का सिर सेठ पीताम्बर की संपत्ति बन गया है। वे चाहें तो इसे काटें और चाहें तो इसे रखें।"

फैसला सुनकर पीताम्बर बड़ा प्रसन्न हुआ। पर ठाकुर ने एक अड़ंगा लगा दिया। वह बोला, "तब तो इसी क्षण से मेरे सिर की रक्षा करने एवं उसका पोषण करने की जिम्मेदारी सेठ पीताम्बर की है।"

न्यायाधीश ने अपनी स्वीकृति दी और विवश होकर सेठ पीताम्बर को ठाकुर जसपालसिंह के सिर की रक्षा एवं पोषण की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेनी पड़ी।

पर यह जिम्मेदारी पीताम्बर को महंगी पड़ी। पीताम्बर को ठाकुर के राजवंश की प्रतिष्ठा के अनुसार उसकी देखभाल करनी पड़ी। इससे पीताम्बर की आर्थिक स्थिति डगमगाने लगी।

कुछ दिन बीत गये। सेठ पीताम्बर के कई अच्छे मित्र थे। वे यह सोचने लगे कि उनके मित्र पीताम्बर के सिर पर जो यह आफ़त आगयी है, उससे उसे कैसे मुक्त किया जाये ? आख़िर उन्हें एक उपाय सूझा। यह उपाय उन लोगों ने पीताम्बर को बताया।

उनकी योजना के अनुसार दूसरे दिन एक आदमी सेठ पीताम्बर के मकानवाली गली से गुज़रता हुआ चिल्लाने लगा, "हम नाक और कान ख़रीदेंगे, कोई बेचेगा ?"

सेठ पीताम्बर ने उस आदमी को बुलाकर पूछा, "अरे भाई, साफ़-साफ़ बताओ, तुम क्या ख़रीदना चाहते हो ?"

"बाबूजी, मैं मनुष्यों की नाक एवं कान ख़रीदता हूँ ।" प्रेमनाथ नाम के उस आदमी ने कहा ।

"किस भाव से ख़रीदोगे ?" पीताम्बर ने प्रेमनाथ से पूछा ।

"अगर किसी बड़े वंश के आदमी के हों तो नाक और दोनों कान के कुल पाँच सौ रुपये दे सकता हूँ ।" प्रेमनाथ बोला ।

सेठ पीताम्बर इस व्यापारी को ठाकुर जसपालसिंह के पास ले गया और दिखाकर बोला, "ये ठाकुर साहब प्रतिष्ठित राजवंश के हैं। इनका सिर फिलहाल मेरा ही है । तुम मुझे पाँच सौ रुपये दो और इनके नाक-कान काट लो !"

यह बात सुनकर ठाकुर जसपालसिंह काँप उठा । बड़े विनम्र स्वर में उसने कहा, "पर, सेठ पीताम्बर ! यह तो सरासर अन्याय है ।"

"अन्याय कैसे है ठाकुर साहब ? यह सिर मेरा है । यह मेरी संपत्ति है ।" सेठ पीताम्बर ने कहा ।

"हम दोनों न्यायाधीश जगतमोहन के पास चलते हैं । वे जो सलाह देंगे, उसे ही हम मानेंगे ।" ठाकुर ने कहा ।

इसके बाद ठाकुर जसपाल सिंह और सेठ पीताम्बर न्यायाधीश जगत मोहन के पास पहुँचे और उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाया ।

न्यायाधीश जगतमोहन ने ठाकुर से कहा, "ठाकुर साहब, सेठ पीताम्बर को आपके नाक-कान बेचने का पूरा हक़ है । आज तक इन्होंने तुम्हारे सिर की देखभाल, साज-सज्जा पर पूरा खर्च किया है । यदि तुम नाक-कान देने से इनकार करते हो तो तुम्हें पूरा हरजाना सेठ पीताम्बर को देना होगा । मतलब, इनके खर्च को ब्याज-सूद सहित चुकाना होगा ।"

न्यायाधीश का फैसला सुनकर ठाकुर कुछ बोल नहीं सका । जो रही-सही थोड़ी-सी संपत्ति उसके पास थी, वह उसे सेठ पीताम्बर के नाम लिखनी पड़ी और हमेशा के लिए उस इलाक़े से चले जाना पड़ा !

रेगिस्तान के पतंगे प्रतिदिन अपने शरीर के वज़न के बराबर का आहार खाते हैं। बड़े पतंगों का दल एक दिन में २०,००० टन की फ़सल को खा सकता है। १७८४ में दक्षिण अफ्रीका में पतंगों के एक दल को दर्ज किया गया, जो २,००० वर्गमील में फैला आज तक का सबसे बड़ा पतंगों का दल माना गया है।

२०,०००,००० और ४०,०००,००० वर्षों के मध्यकाल में जीवित बलूचिथेरियं नामक जानवर पृथ्वी पर निवास करनेवाले सस्तन जानवरों में बहुत बड़ा माना जाता है। इसकी लंबाई ६७ फुट तथा इसका वज़न २० टन था।
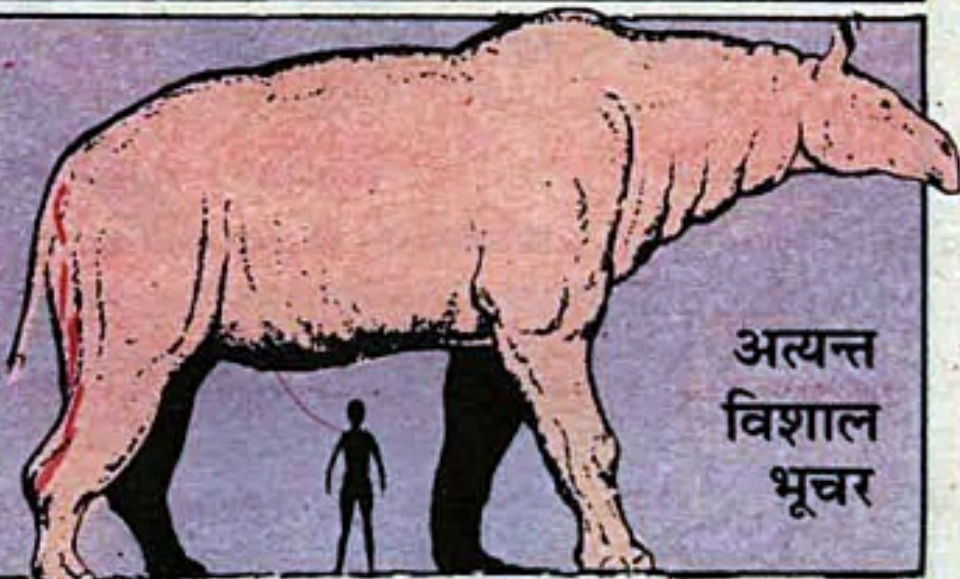
अमरीका के एल्लोस्टोन' नेशनल पार्क में विश्व भर में अत्यन्त प्रबल 'ओलड फेथफुल' नाम का एक उष्ण जल-निर्झर है। यह ६० मिनट में एक बार १४० फुट की ऊँचाई तक उछलता है।

नया कैम्लिकोल-86

आर्ट्स एन्ड क्राफ्ट्स एढेसिव

टूटे खिलौने... फर्नीचर और सजावट के सामान... फोटोफ्रेम... घरेलू सामान... लेखन-पठन सामग्री... पैकेजिंग... उपहार बाँधने के लिए...

नया कैम्लिकोल-८६ इन्हें भली भाँति जोड़ता-चिपकाता है— जल्दी, आसानी से और किफ़ायत से. इस सुविधाजनक बहुउद्देशीय एढेसिव को घर में अवश्य रखिए. मौलिक कलाकृतियाँ बनाने के लिए भी यह बहुत बढ़िया है।

नया कैम्लिकोल-८६ कैम्लिन के शोध व विकास प्रयत्नों तथा कैम्लिन के पाँच से भी अधिक दशकों के अनुभव का परिणाम है, जिसने आपको बेहतरीन, कला व लेखन सामग्री प्रदान की. इन सबके अलावा है गुणवत्ता और कैम्लिन का अटूट रिश्ता

बेहतरीन एढेसिव

 कैम्लिन प्रायवेट लिमिटेड स्टेशनरी डिवीजन, बंबई - ४०० ०५९.

AYOJAN-C-HIN 1

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ सितम्बर १९८७ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

S. B. Takalkar

K. S. Vijayaker

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ जुलाई १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

मई के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : राधा संग श्याम मुरारी!

द्वितीय फोटो : गणेशजी की निकली सवारी!!

प्रेषक : डिम्पल, २०/७, एम.ई.एस. नलवा रोड, जालंधर कैंट (पंजाब)

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

No 'flip and discard' magazine

"An issue of The Heritage is generally read more than once by its readers... usually, read in depth. Over 90% of Heritage readers preserve their copy..."

It's an unusual magazine. It has a vision for today and tomorrow.
It features ancient cities and contemporary fiction, culture and scientific developments, instead of filmstar interviews and political gossip. And it has found a growing readership, an IMRB survey reveals. Professionals, executives and their families are reading The Heritage in depth – 40% from cover to cover, 42% more than half the magazine.
More than 80% of The Heritage readers are reading an issue more than once.
And over 90% are slowly building their own Heritage collection.
Isn't it time you discovered why?

CMP-2155

THE HERITAGE

So much in store, month after month.

केवल खिलौने कॉमिक्स और
रवि को चाहिए कुछ और
खुद ही सोचे, खुद ही बनाए
जिससे तबियत खुश हो जाए
एको पेन सेट उसने उठाया,
घर के ऊपर मोर बनाया,
डैडी की मूंछें, एक शिकारी
एक कबूतर, एक भिखारी.
एको हरे और एको पीले
लाल और ऑरेंज, भूरे, नीले
काले, बैंगनी, वायलेट, गुलाबी
अब तो स्केच पेन एको ही लें.
EKCO
एको
स्केच पेन रंगों से यारी, मौज-मस्ती तुम्हारी!
प्रिसिज़न राइटिंग प्रॉडक्ट्स प्रा. लि. १८, सुभाष रोड, विले पारले (पूर्व), बम्बई-४०० ०५७.
फोन : ६०४०३०५, ६०४२५५६.